अध्याय 1

स्वर्णिम भारत – प्रारम्भ से 1206 ई. तक

भारत का इतिहास एवं संस्कृति अपने प्रारम्भिक काल से ही गौरवशाली रही है। भारत 'विश्व गुरु' एवं 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। सम्पूर्ण विश्व को परिवार के रूप में मानना (वसुधैव कुटुम्बकम्) तथा सभी के कल्याण व स्वास्थ्य की कामना (सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया) करना हमारा आदर्श है।

उत्खनन और पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी स्वरूप दिखाई देता है। समुद्र पार भारतीय प्रदेशों को दीपान्तर कहा जाता था। शक्तिशाली जलयानों में यात्रा करके भारतीय ब्रह्मदेश, श्याम, इण्डोनेशिया, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, बोर्निओ, फिलीपींस, जापान व कोरिया तक पहुँचे और वहाँ अपना राजनैतिक व सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया। प्राचीन भारत में हमारे बन्दरगाह एवं नाविक शक्ति अत्यधिक विकसित थी। सिन्धु नदी में छः हजार वर्ष पूर्व चलने वाले जलयानों का उल्लेख विद्वानों ने किया है। भारतीय जल व थल दोनो मार्गों से विश्व के विभिन्न देशों में पहुँचे और वहाँ के निवासियों को अपने धर्म व संस्कृति से परिचित कराया। इन साहसी वीरों ने भारतीय दर्शनविज्ञान ज्योतिष, स्थापत्य, युद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, संगीत व वैदिक ग्रन्थों का विश्व में प्रसार किया। भारत की प्राचीन सभ्यताओं का हमें प्रारम्भ से ही विकसित स्वरूप दिखाई देता है।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता, वैदिक सभ्यता, रामायण एवं महाभारत कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का काल भी भारत का स्वर्णिम काल रहा है। वेदों को विश्व ज्ञानकोश के रूप में जाना जाता है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता स्थापत्य की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट सभ्यता है। रामायण और महाभारत भारत के विभिन्न आदर्श एवं नीति ग्रन्थों के रूप में प्रसिद्ध रहे है। हमारा महाजनपद काल गणतंत्रात्मक एवं संवैधानिक व्यवस्था का आदर्श रहा है।

उत्तरवैदिक काल में हमें विभिन्न जनपदों का अस्तित्व दिखाई देता है। इस काल तक पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में लौह का व्यापक रूप से उपयोग किया जाने लगा था। लौह तकनीक ने लोगों के भौतिक जीवन में बड़ा परिवर्तन कर दिया तथा इससे समाज में स्थायी जीवन यापन की प्रवृत्ति सुदृढ़ हो गयी। कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के विकास ने प्राचीन जनजातीय व्यवस्था को जर्जर बना दिया तथा छोटे–छोटे जनों का स्थान बड़े जनपदों ने ग्रहण कर लिया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक आते–आते जनपद, महाजनपदों के रूप में विकसित हो गये।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में उत्तर भारत में सार्वभौम सत्ता का पूर्णतया अभाव था। सम्पूर्ण भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। ये राज्य उत्तर–वैदिककालीन राज्यों की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा शक्तिशाली थे।

(i) महाजनपद काल (600–325 ई.पू.)

छठी शताब्दी ई.पू. में उत्तर भारत में अनेक विस्तृत और शक्तिशाली स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई, जिन्हें महाजनपदों की संज्ञा दी गई। बौद्ध ग्रंथ 'अगुत्तरनिकाय' के अनुसार उस समय 16 महाजनपद विद्यमान थे–

	महाजनपद		राजधानी
1.	काशी	:	वाराणसी
2.	कुरु	:	इन्द्रप्रस्थ
3.	अंग	:	चम्पा
4.	मगध	:	राजगृह या गिरिव्रज
5.	वज्जि	:	विदेह और मिथिला
6.	मल्ल	:	कुशावती (कुशीनारा)
7.	चेदि	:	शक्तिमती (सोत्थिवती)
8.	वत्स	:	कौशाम्बी
9.	कोशल	:	अयोध्या (बुद्धकाल में दो भाग, उत्तरी भाग की राजधानी – साकेत ; दक्षिणी भाग की राजधानी– श्रावस्ती)
10.	पांचाल	:	उत्तरी पांचाल की राजधानी – अहिच्छत्र, दक्षिणी पांचाल की राजधानी– कांपिल्य
11.	मत्स्य	:	विराटनगर
12.	शूरसेन	:	मथुरा (मेथोरा / शूरसेनाई)
13.	अश्सक	:	पोतन या पाटेली
14.	अवन्ति	:	उत्तरी अवन्ति की राजधानी – उज्जयिनी, दक्षिणी अवन्ति की राजधानी – महिष्मती
15.	गांधार	:	तक्षशिला
16.	कम्बोज	:	राजपुर / हाटक

उपर्युक्त 16 महाजनपदों में दो प्रकार के राज्य थे – राजतंत्र और गणतंत्र। कोशल, वत्स, अवन्ति और मगध उस समय सर्वाधिक शक्तिशाली राजतंत्र थे। छठी शताब्दी ई.पू. में अनेक गणतंत्रों का भी अस्तित्व था, जिनमें प्रमुख थे – कपिलवस्तु के शाक्य, सुंसुमारगिरि के भाग, अल्लकप्प के बुली, केसपुत्त के कालाम, रामग्राम के कोलिय, कुशीनारा के मल्ल, पावा के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, वैशाली के लिच्छवि और मिथिला के विदेह।

राजस्थान के प्रमुख जनपद –

वैदिक सभ्यता के विकासक्रम में राजस्थान में भी जनपदों का उदय देखने को मिलता है। यूनानी आक्रमण के कारण पंजाब की मालव, शिवी, अर्जुनायन आदि जातियाँ, जो अपने साहस और शौर्य के लिए प्रसिद्ध थीं, राजस्थान में आईं और यहीं पर निवास करने लगीं। इस प्रकार राजस्थान के पूर्वी भाग में जनपदीय शासन व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

प्रमुख जनपद ये थे –

जांगल –

वर्तमान बीकानेर और जोधपुर के जिले महाभारत काल में जांगलदेश कहलाते थे। कहीं–कहीं इसका नाम कुरू–जांगला और माद्रेय–जांगला भी मिलता है। इस जनपद की राजधानी अहिछत्रपुर थी, जिसे इस समय नागौर कहते हैं। बीकानेर के राजा इसी जांगल देश के स्वामी होने के कारण स्वयं को 'जांगलधर बादशाह' कहते थे। बीकानेर राज्य के राजचिह्न में भी 'जय जांगलधर बादशाह' लिखा मिलता है।

मत्स्य –

वर्तमान जयपुर के आस–पास का क्षेत्र मत्स्य महाजनपद के नाम से जाना जाता था। इसका विस्तार चम्बल के पास की पहाड़ियों से लेकर सरस्वती नदी के जांगल क्षेत्र तक था। आधुनिक अलवर और भरतपुर के कुछ भू–भाग भी इसके अन्तर्गत आते थे। इसकी राजधानी विराटनगर थी, जिसे वर्तमान में 'बैराठ' नाम से जाना जाता है। मौर्य शासक बिन्दुसार से पहले मत्स्य जनपद की स्पष्ट जानकारी का अभाव है। 'महाभारत' में कहा गया है कि शहाज नामक एक राजा ने चेदि तथा मत्स्य दोनों राज्यों पर शासन किया। मत्स्य प्रारंभ में चेदि राज्य का और कालान्तर में यह विशाल मगध साम्राज्य का अंग बन गया।

शूरसेन –

आधुनिक ब्रज क्षेत्र में यह महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी मथुरा थी। प्राचीन यूनानी लेखक इस राज्य को 'शूरसेनोई' तथा राजधानी को 'मेथोरा' कहते हैं। 'महाभारत' के अनुसार यहाँ यदु (यादव) वंश का शासन था। भरतपुर, धौलपुर तथा करौली जिलों के अधिकांश भाग शूरसेन जनपद के अन्तर्गत आते थे। अलवर जिले का पूर्वी भाग भी शूरसेन के अन्तर्गत आता था। वासुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण का संबंध इसी जनपद से था।

शिवि –

शिवि जनपद की राजधानी शिवपुर थी तथा राजा सुशिन ने उसे अन्य जातियों के साथ दस राजाओं के युद्ध में पराजित किया था। प्राचीन शिवपुर की पहचान वर्तमान पाकिस्तान के शोरकोट नामक स्थान से की जाती है। कालान्तर में दक्षिणी पंजाब की यह शिवि जाति राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में निवास करने लगी।

चित्तौड़गढ़ के पास स्थित नगरी इस जनपद की राजधानी थी। मेवाड़ के अनेक स्थानों से शिवियों के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। मन्दसौर के पास पाँच गुहालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे शिवि जनपद का प्रसार पश्चिम से लेकर दक्षिण पूर्व तक होना ज्ञात होता है।

गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली के बावजूद इन जनपदों की राजसत्ता कुलीन परिवारों के हाथों में ही थी। इन परिवारों के प्रतिनिधि ही संथागार सभा के प्रमुखों के रूप में शासन की व्यवस्था करते थे। संथागार के सदस्य निर्धारित विषयों पर अपने विचार व्यक्त कर सकते थे। इसे 'अनयुविरोध' कहा जाता था। जो विषय विवादग्रस्त होते थे उन पर मतदान कराया जाता था। मतदान में बहुरंगी शलाकाएं काम में ली जाती थीं। संथागार जनपदों की सबसे बड़ी संस्था थी। राज्य की नीति के आधारभूत नियमों का निर्धारण इसी सभा में होता था। विशाल गणराज्यों में केन्द्रीय संथागार के अलावा प्रान्तीय संथागार भी होते थे। कालान्तर में गुटबाजी एवं आपसी फूट के कारण इन गणराज्यों का पतन हुआ। समकालीन राजतन्त्रों की विस्तारवादी नीति न्यूनाधिक रूप से इनके पतन के लिये उत्तरदायी थी।

(ii) मौर्य, शुंग, सातवाहन, गुप्त, वर्धन, पाल, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, चोल, पल्लव एवं चालुक्य साम्राज्य

मौर्य वंश :–

सोलह महाजनपदों में से एक मगध का एक साम्राज्य के रूप में आविर्भाव हर्यक वंश के समय हुआ और कालान्तर में मगध ने प्रायः समस्त उत्तर भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

मौर्य वंश की स्थापना–

ईसा पूर्व 326 ई. के लगभग मगध के राजसिंहासन पर नंद वंश का एक विलासी राजा घननंद सिंहासनारूढ़ था। इस समय पश्चिमोत्तर भारत सिकंदर से आक्रांत था। प्रजा अपने राजा के अत्याचारों से भी पीड़ित थी। असह्य कर–भार के कारण राज्य के लोग उससे असंतुष्ट थे। इस परिस्थिति में मगध को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो विदेशी आक्रमण से उत्पन्न संकट को दूर करे और उसे एक सूत्र में बाँधकर चक्रवर्ती सम्राट के आदर्श को चरितार्थ करे। शीघ्र ही भारत के राजनीतिक नभमंडल पर कौटिल्य का शिष्य चंद्रगुप्त प्रकट हुआ तथा एक नवीन राजवंश 'मौर्यवंश' की स्थापना की।

चंद्रगुप्त मौर्य (322–298 ई.पू.) –

अपने गुरु चाणक्य की सहायता से अंतिम नंद शासक घननंद को पराजित कर 25 वर्ष की आयु में चंद्रगुप्त मौर्य मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य ने व्यापक विजय अभियान करके प्रथम अखिल भारतीय साम्राज्य की स्ीापना की। 305 ई. पू. में उसने तत्कालीन यूनानी शासक सिल्यूकस निकेटर को पराजित किया। संधि हो जाने के बाद सिल्यूकस ने चंद्रगुप्त से 500 हाथी लेकर पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु नदी के पश्चिम का क्षेत्र उसे दे दिया। सिल्यूकस ने अपनी पुत्री का विवाह भी चंद्रगुप्त से कर दिया और मेगस्थनीज को अपने राजदूत के रूप में उसके दरबार में भेजा। चंद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य में काबुल, हेरात, कंधार, बलूचिस्तान, पंजाब, गंगा–यमुना का मैदान, बिहार, बंगाल, गुजरात, विन्ध्य और कश्मीर के भू–भाग सम्मिलित थे। तमिल ग्रंथ 'अहनानूरू' और 'मुरनानुरू' से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण किया था। वृद्धावस्था में उसने भद्रबाहु से जैन धर्म की दीक्षा ले ली। उसने

298 ई.पू. में श्रवणबेलगोला (मैसूर) में उपवास करके अपना शरीर त्याग दिया।

बिन्दुसार (298 ई.पू.–272 ई.पू.) : बिन्दुसार चंद्रगुप्त मौर्य का पुत्र व उत्तराधिकारी था जिसे यूनानी लेखक अमित्रोचेट्स कहते थे। वायुपुराण में इसे भद्रसार तथा जैन ग्रंथों में सिंहसेन कहा गया है। उसने सुदूरवर्ती दक्षिण भारतीय क्षेत्रों को भी जीतकर मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। 'दिव्यावदान' के अनुसार इसके शासनकाल में तक्षशिला में दो विद्रोह हुए, जिसका दमन करने के लिए पहले अशोक और बाद में सुसीम को भेजा गया। बिन्दुसार के राजदरबार में यूनानी शासक एन्टीयोकस प्रथम ने डायमेकस नामक व्यक्ति को राजदूत के रूप में नियुक्त किया। प्लिनी के अनुसार मिस्र नरेश फिलाडेल्फस (मेली द्वितीय) ने 'डियानीसियस' नामक मिस्री राजदूत बिन्दुसार के दरबार में भेजा था।

अशोक (273–232 ई.पू.) : जैन अनुश्रति के अनुसार अशोक ने बिन्दुसार की इच्छा के विरुद्ध मगध के शासन पर अधिकार कर लिया। दक्षिण भारत से प्राप्त मास्की तथा गुज्जरा अभिलेखों में उसका नाम 'अशोक' मिलता है। अभिलेखों में अशोक 'देवानांपिय' तथा 'देवानांपियदस्सी' उपाधियों से विभूषित है। विदिशा की राजकुमारी से अशोक का विवाह हुआ तथा उससे पुत्री संघमित्रा तथा पुत्र महेन्द्र का जन्म हुआ। अशोक के अभिलेखों में उसकी रानी कारुवाकी का उल्लेख भी मिलता है।

राज्याभिषेक के सात वर्ष बाद अशोक ने कश्मीर तथा खोतान के अनेक क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिलाया। उसके समय में मौर्य साम्राज्य में तमिल प्रदेश के अतिरिक्त समूचा भारत और अफगानिस्तान का काफी बड़ा भाग शामिल था। राज्याभिषेक के 8वें वर्ष (261 ई.पू.) में अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया, जिसमें 1 लाख लोग मारे गये। हाथीगुम्फा अभिलेख के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय कलिंग पर नंदराज शासन कर रहा था। इस व्यापक नरसंहार ने अशोक को विचलित कर दिया, फलतः उसने शस्त्रत्याग की घोषणा कर दी। मगध साम्राज्य के अंतर्गत कलिंग की राजधानी धौली या तोसाली बनायी गयी। श्रमण निग्रोध तथा उपगुप्त के प्रभाव में आकर अशोक बौद्धधर्म में दीक्षित हो गया और उसने भेरीघोष के स्थान पर धम्मघोष अपना लिया। बौद्ध धर्म स्वीकार करने से पूर्व 'राजतंरगिणी' (कल्हण) के अनुसार अशोक शिव का उपासक था। बाद में वह गुरु मोग्गलिपुत्रतिस्स के प्रभाव में आ गया। बराबर की पहाड़ियों में अशोक ने आजीवकों के निवास हेतु चार गुहाओं का निर्माण कराया, जिनके नाम थे – सुदामा, चापार, विश्वझोपड़ी और कर्ण। उसने राज्याभिषेक के 10वें वर्ष में बोधगया, तथा 20वें वर्ष में लुम्बिनी (कपिलवस्तु) की धम्मयात्रा की। रुम्मनदेई अभिलेख से विदित होता है कि उसने वहाँ भूमिकर की दर 1/6 से घटाकर 1/8 कर दी थी। अशोक के शिलालेखों में चोल, चेर, पांड्य और केरल के सीमावर्ती स्वतंत्र राज्य बताये गये हैं। राज्याभिषेक से सम्बन्धित लघु शिलालेख में अशोक ने स्वयं को बुद्धशाक्य कहा है।

धम्म : अशोक ने मनुष्य की नैतिक उन्नति हेतु जिन आदर्शों का प्रतिपादन किया उन्हें 'धम्म' कहा गया। अशोक के धम्म की परिभाषा दूसरे तथा सातवें स्तम्भलेख में दी गयी है। उसके अनुसार पापकर्म से निवृत्ति, विश्व कल्याण, दया, दान, सत्य एवं कर्मशुद्धि ही धम्म है। साधु स्वभाव होना, कल्याणकारी कार्य करना, पाप रहित होना, व्यवहार में मृदुता लाना, दया रखना, दान करना, शुचिता रखना, प्राणियों का वध न करना, माता–पिता व अन्य बड़ों की आज्ञा मानना, गुरु के प्रति आदर, मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों–श्रमणों के प्रति दानशीलता होना व उचित व्यवहार करना अशोक द्वारा प्रतिपादित धम्म की आवश्यक शर्ते हैं। तीसरे अभिलेख के अनुसार– धम्म में अल्प संग्रह और अल्प व्यय का भी विधान था। भब्रू शिलालेख के अनुसार अशोक ने बुद्ध के त्रिरत्नों बुद्ध, धम्म व संघ के प्रति अपनी आस्था प्रकट की।

साँची (रायसेन, मध्य प्रदेश) व सारनाथ (वाराणसी, उत्तर प्रदेश) लघु स्तंभ लेख में अशोक ने कौशाम्बी तथा पाटलीपुत्र के महामात्रों को आदेश दिया कि संघ में फूट डालने वाले भिक्षु–भिक्षुणियों को बहिष्कृत कर दिया जाये। प्रथम शिलालेख में यह विज्ञप्ति जारी की गयी कि किसी भी यज्ञ के लिए पशुओं का वध न किया जाये।

धम्म यात्रा : अशोक से पूर्व 'विहार यात्राएँ की जाती थीं, जिनमें राजा पशुओं का शिकार करते थे। अशोक ने इनके स्थान पर धम्म यात्रा का प्रावधान किया, जिसमें बौद्ध स्थानों की यात्रा तथा ब्राह्मणों, श्रमणों व वृद्धों को स्वर्ण दान किया जाता था।

अनुसंधान : अशोक के काल में राज्य के कर्मचारियों – प्रादेशिकों राज्जुकों और युक्तकों को प्रति पांचवे वर्ष धर्म–प्रचार हेतु यात्रा पर भेजा जाता था, जिसे लेखों में 'अनुसंधान' कहा गया है।

धम्ममहामात्र : राज्याभिषेक के 14वें वर्ष में अशोक ने धम्ममहामात्रों की नियुक्ति की, जिनके मुख्य कार्य थे – जनता में धम्म का प्रचार करना, उन्हें कल्याणकारी कार्य करने तथा दानशीलता के लिए प्रोत्साहित करना, कारावास से कैदियों को मुक्त करना या उनकी सजा कम करना, उनके परिवार की आर्थिक सहायता, करना आदि।

अभिलेख :– अशोक प्रथम शासक था, जिसने अभिलेखों के माध्यम से अपनी प्रजा को संबोधित किया, जिसकी प्रेरणा उसे ईरानी राजा दारा (डेरियस–प्रथम) से मिली थी। अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं, जबकि पश्चिमोत्तर भारत (मन्सेरा, शाहबाजगढ़ी) से प्राप्त उसके अभिलेख खरोष्ठी लिपि में हैं। टोपरा से दिल्ली लाये गये एक स्तम्भ पर सात लेख एक साथ उत्कीर्णित हैं। दूसरे व तीसरे अभिलेख में यवन नरेश आंटियोकस द्वितीय का उल्लेख है। अशोक के अभिलेखों को पढ़ने में पहली बार सफलता जेम्स प्रिंसेप को प्राप्त हुई।

तामपर्णी (श्रीलंका) के राजा तिस्स ने अशोक से प्रभावित होकर देवनांपिय की उपाधि धारण की थी। दूसरे राज्याभिषेक के अवसर उसने अशोक को आमन्त्रित भी किया था। अशोक का पुत्र महेन्द्र बोधिवृक्ष का एक भाग लेकर वहाँ पहुँचा। यहाँ से श्रीलंका में बौद्धधर्म का पदार्पण माना जाता है।

40 वर्ष शासन करने के बाद 232 ई.पू. में अशोक की मृत्यु हो गयी।

अशोक के उत्तराधिकारी तथा मौर्य साम्राज्य का पतन –

अशोक के बाद अगले 50 वर्ष तक उसके कमजोर उत्तराधिकारियों का शासन रहा। अशोक के बाद कुणाल राजा बना जिसे दिव्यावदान में 'धर्मविवर्धन' कहा गया है। 'राजतरंगिणी' के

अनुसार उस समय जलौक कश्मीर का शासक था। तारानाथ के अनुसार अशोक का पुत्र वीरसेन गांधार का स्वतंत्र शासक बन गया था। कुणाल के अंधा होने के कारण मगध का प्रशासन उसके पुत्र सम्प्रति के हाथ में आ गया था। कुणाल के पुत्र दशरथ ने भी मगध पर शासन किया। उसने नागार्जुनी गुफाएं आजीवकों को दान में दी थी।

वृहद्रथ अंतिम मौर्य सम्राट था। उसके ब्राह्मण मंत्री पुष्यमित्र शुंग ने उसकी हत्या करके मगध में शुंग वंश के शासन की नींव डाली।

मौर्य प्रशासन :—

मौर्य काल में भारत ने पहली बार केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था की स्थापना हुई। सत्ता का केन्द्रीकरण राजा में होते हुए भी वह निरंकुश नहीं होता था। कौटिल्य ने राज्य के सात अंग निर्दिष्ट किए हैं : राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र। राजा द्वारा मुख्यमंत्री व पुरोहित की नियुक्ति उनके चरित्र की भली—भाँति जाँच के बाद ही की जाती थी। इस क्रिया को उपधा परीक्षण कहा जाता था। ये लोग मंत्रिमंडल के अंतरंग सदस्य थे। मंत्रिमंडल के अतिरिक्त परिशा मंत्रिणः भी होता था, जो एक तरह से मंत्रिपरिषद् था।

केन्द्रीय प्रशासन : अर्थशास्त्र में 18 विभागों का उल्लेख है, जिन्हें 'तीर्थ' कहा गया है। तीर्थ के अध्यक्ष को 'महामात्र' कहा गया है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थ थे – मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज।

समाहर्त्ता : इसका कार्य राजस्व एकत्र करना, आय—व्यय का ब्यौरा रखना तथा वार्षिक बजट तैयार करना था।

सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) : साम्राज्य के विभिन्न भागों में कोषगृह और अन्नागार बनवाना। अर्थशास्त्र में 26 विभागाध्यक्षों का उल्लेख है, जैसे—कोषाध्यक्ष, सीताध्यक्ष (कृषि), पण्याध्यक्ष (व्यापार), सूत्राध्यक्ष (कताई, बुनाई), लूनाध्यक्ष (बूचड़खाना), विवीताध्यक्ष (चारागाह), लक्षणाध्यक्ष (मुद्रा जारी करना), मुद्राध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष, बंधनागाराध्यक्ष, आटविक (वन विभाग का प्रमुख) इत्यादि। 'युक्त' व 'उपयुक्त' महामात्य तथा अध्यक्षों के नियंत्रण में निम्न स्तर के कर्मचारी होते थे।

प्रांतीय प्रशासन : अशोक के समय में मगध साम्राज्य के पांच प्रांतों का उल्लेख मिलता है – उत्तरापथ (तक्षशिला), अवंतिराष्ट्र (उज्जयिनी), कलिंग (तोसली), दक्षिणापथ (सुवर्णगिरि), मध्य देश (पाटलिपुत्र)। प्रांतों का शासन राजवंशीय 'कुमार' या 'आर्यपुत्र' नामक पदाधिकारियों द्वारा होता था। प्रांत विषयों में विभक्त थे, जो विषयपतियों के अधीन होते थे। जिले का प्रशासनिक अधिकारी 'स्थानिक' होता था, जो समाहर्त्ता के अधीन था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई का मुखिया 'गोप' था, जो दस गाँवों का शासन संभालता था। समाहर्ता के अधीन प्रदेष्ट्रि नामक अधिकारी भी होता था, जो स्थानिक, गोप व ग्राम अधिकारियों के कार्यों की जाँच करता था।

नगर शासन : मेगस्थनीज के अनुसार नगर का शासन—प्रबंध 30 सदस्यों का एक मंडल करता था, जो 6 समितियों में विभक्त था— प्रथम समिति (उद्योग शिल्पों का निरीक्षण), द्वितीय समिति (विदेशियों की देख—रेख करना), तृतीय समिति (जन्म—मरण का लेखा—जोखा करना), चतुर्थ समिति (व्यापार/वाणिज्य; देखना), पांचवीं समिति (निर्मित वस्तुओं के विक्रय का निरीक्षण करना और छठी समिति (विक्रय मूल्य का दसवाँ भाग बिक्री कर के रूप में वसूलना), प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे।

सैन्य व्यवस्था : सेना के संगठन हेतु पृथक सैन्य विभाग था, जो 6 समितियों में विभक्त था। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। ये समितियाँ सेना के पाँच विभागों की देखरेख करती थीं ये पांच विभाग थे— पैदल, अश्व, हाथी, रथ तथा नौसेना। सैनिक प्रबंध की देखरेख करने वाला अधिकारी 'अंतपाल' कहलाता था। सीमांत क्षेत्रों का व्यवस्थापक भी 'अंतपाल' होता था। मेगस्थनीज (इंडिका) के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य के पास 6 लाख पैदल, पचास हजार अश्वारोही, नौ हजार हाथी तथा आठ सौ रथों से सुसज्जित विराट सेना थी।

न्याय व्यवस्था : सम्राट न्याय प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। निचले स्तर पर ग्राम न्यायालय थे, जहाँ ग्रामणी और ग्रामवृद्ध अपना निर्णय देते थे। इसके ऊपर संग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय और जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। सबसे ऊपर पाटलिपुत्र का केन्द्रीय न्यायालय था। ग्रामसंघ और राजा के न्यायालय के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालय दो प्रकार के थे।

1. धर्मस्थीय : इन न्यायालयों में निर्णय का कार्य धर्मशास्त्र में निपुण तीन धर्मस्थ या व्यावहारिक और तीन अमात्य करते थे। धर्मास्थीय एक प्रकार की दीवानी अदालत होती थी। चोरी, डाके व लूट के मामले, जिन्हें 'साहस' कहा गया है, भी धर्मस्थीय अदालतों में रखे जाते थे। कुवचन, मान—हानि, मारपीट के मामले भी धर्मस्थीय न्यायालय में ही लाये जाते थे, जिन्हें 'वाक् पारूश्य' या 'दंड पारूश्य' कहा गया है।

2. कंटकशोधन : ये फौजदारी अदालतें थीं। तीन प्रदेष्ट्रि तथा तीन अमात्य मिलकर राज्य तथा व्यक्ति के मध्य विवादों का निर्णय करते थे। नगर न्यायाधीश को 'व्यावहारिक महामात्र' तथा जनपद न्यायाधीश को 'राज्जुक' कहते थे। चाणक्य के अनुसार कानून के चार मुख्य अंग हैं – धर्म, व्यवहार, चरित्र और शासन।

मौर्यकालीन समाज : कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज कृत इंडिका तथा अशोक के अभिलेखों से मौर्यकाल की सामाजिक व्यवस्था की जानकारी मिलती है। कौटिल्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था को सामाजिक संगठन का आधार माना है। कौटिल्य ने चारों वर्णों के व्यवसाय भी निर्धारित किए हैं। चार वर्णों के अतिरिक्त कौटिल्य ने अन्य जातियों, जैसे—निशाद्, पारशव, रथकार, क्षता, वेदेहक, सूत, चांडाल आदि का उल्लेख भी किया है।मेगस्थनीज की 'इण्डिका' में भारतीय समाज का वर्गीकरण सात जातियों में किया है— दार्शनिक, किसान, पशुपालक व शिकारी, कारीगर या शिल्पी, सैनिक, निरीक्षक, सभासद तथा अन्य शासक वर्ग। मेगस्थनीज ने अपने वर्गीकरण में जाति, वर्ण और व्यवसाय के अंतर को भुला दिया है।

मौर्यकाल में स्त्रियाँ की स्थिति को अधिक उन्नत नहीं कहा जा सकता, फिर भी स्मृतिकाल की अपेक्षा वे अधिक अच्छी स्थिति में थीं तथा उन्हें पुनर्विवाह व नियोग की अनुमति थी।

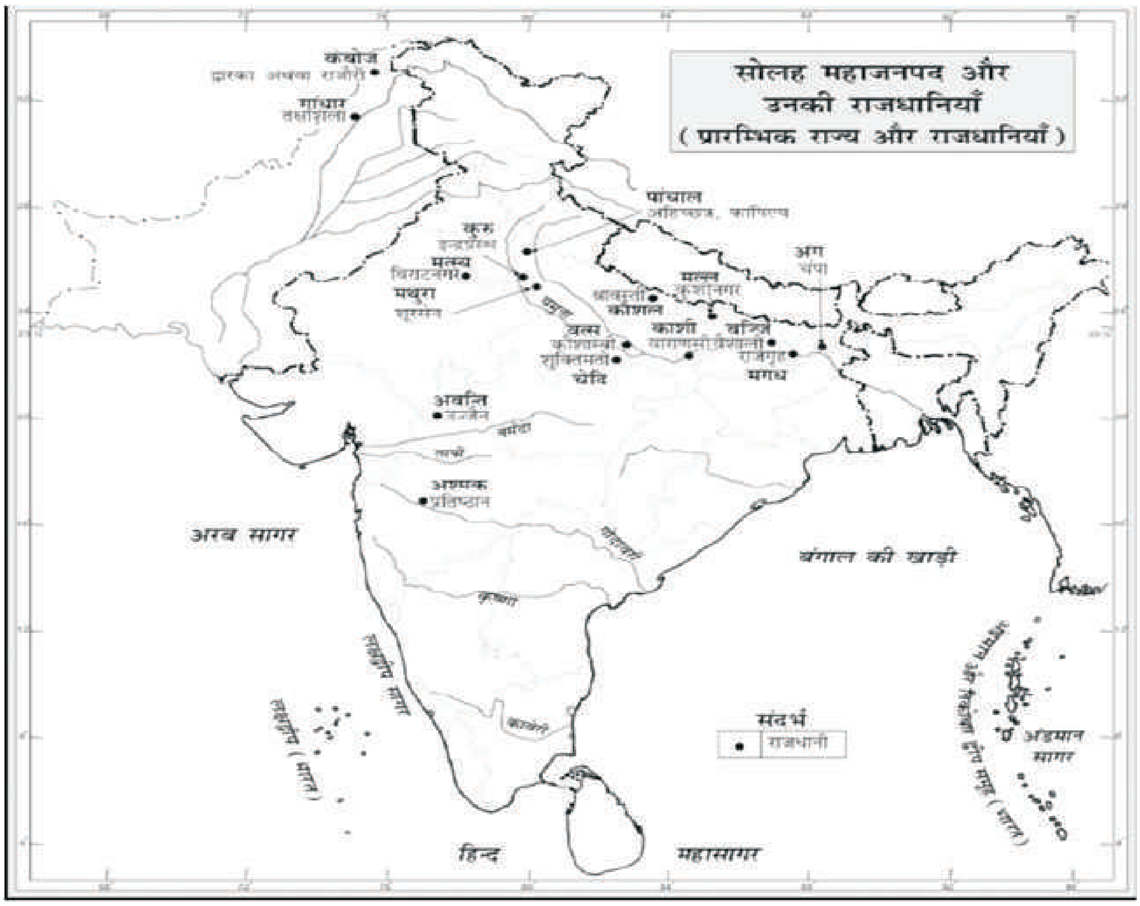

मानचित्र–1.1 महाजनपद

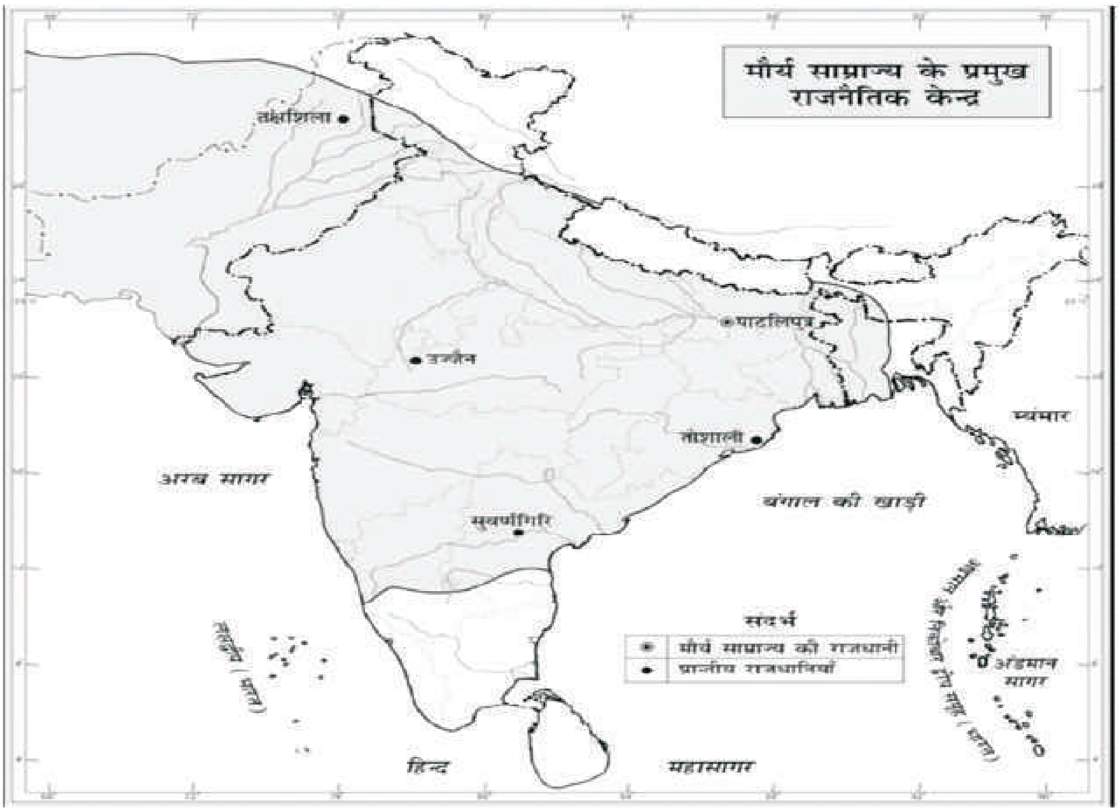

मानचित्र–1.2 मौर्य साम्राज्य

चित्र 1.3 साँची स्तूप

चित्र 1.4 अशोक स्तम्भ

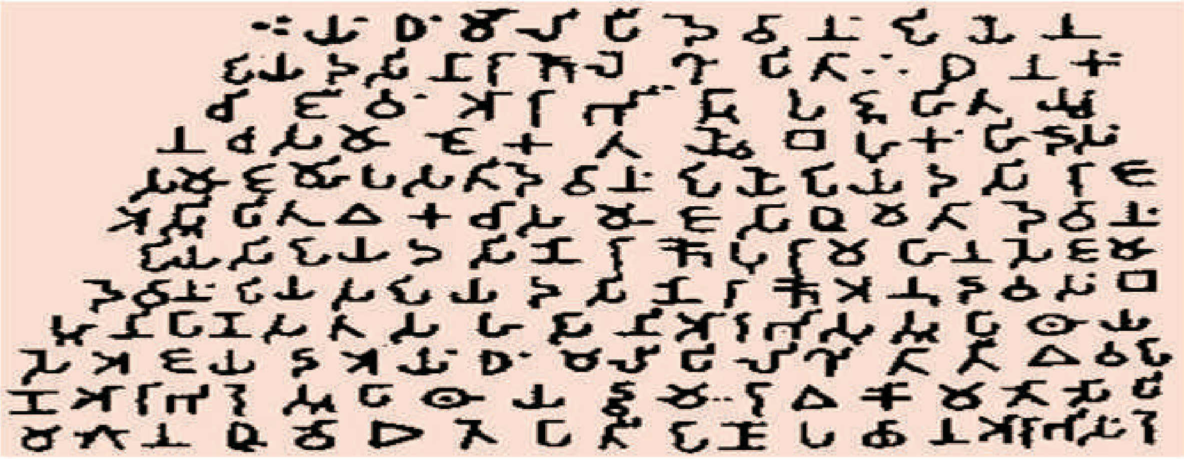

चित्र 1.5 अशोककालीन अभिलेख–लिपि

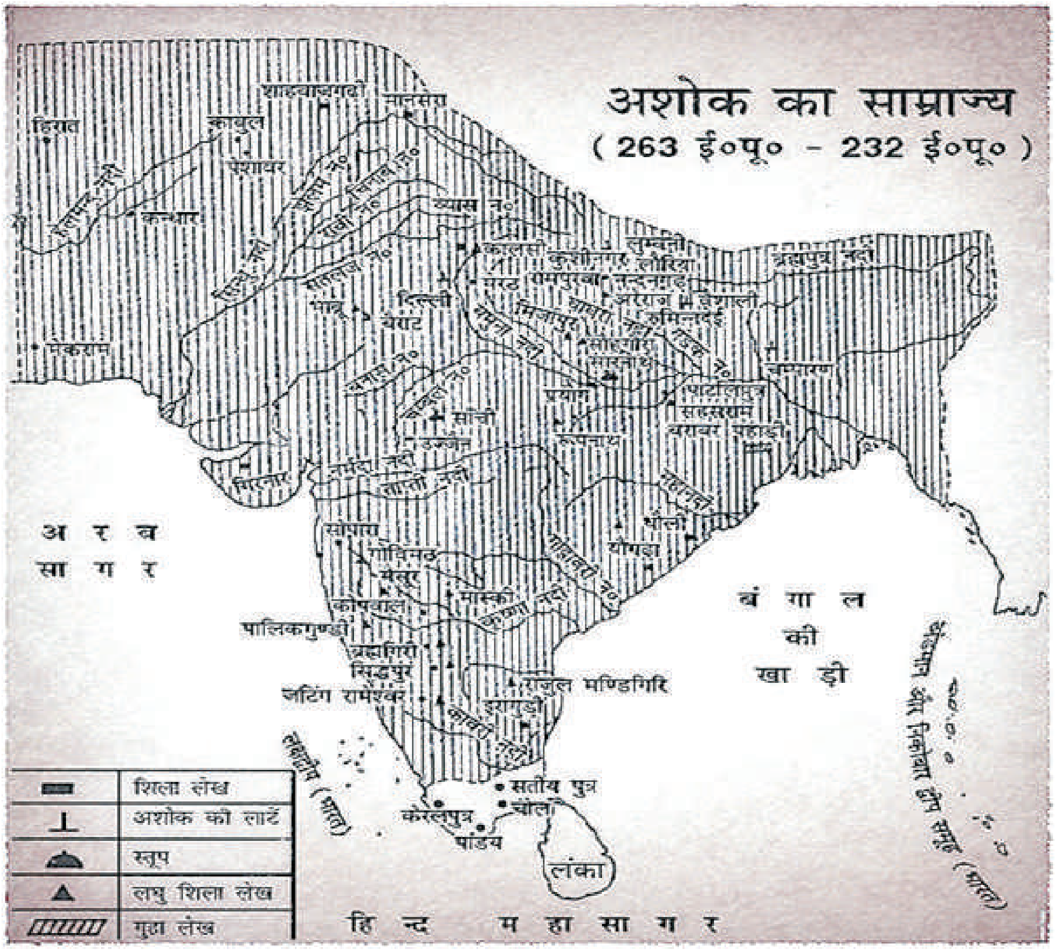

चित्र 1.6 अशोक का साम्राज्य

शुंग वंश –

इसकी स्थापना 185 ई. पू. में पुष्यमित्र शुंग ने की। मौर्य राजा वृहद्रथ का प्रधान सेनापति था। उसने उसे मार कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने 151 ई.पू. तक राज्य किया। उसने कई युद्धों में विजय प्राप्त की और अपने राज्यकाल में दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। सुप्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पतंजलि अश्वमेध यज्ञ में उसका पुरोहित था।

पुष्यमित्र के बाद शुंगवंश में जो प्रमुख राजा हुए, उनके नाम थे – अग्निमित्र, ज्येष्ठमित्र, भद्रक, भागवत और देवभूति। देवभूति को उसके अमात्य वासुदेव ने लगभग 73 ई.पू. में सिंहासन से उतार दिया।

सातवाहन वंश–

आंध्र (गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटी) में सिमुक नामक व्यक्ति ने लगभग 60 ई. पू. में सातवाहन वंश की नींव डाली। यह राजवंश आंध्र और सातवाहन दोनों नामों से विख्यात है।

सिमुक का राज्यकाल 37 ई.पू. तक माना जाता है। उसके उपरान्त शातकर्णि प्रथम ने सातवाहन वंश की शक्ति एवं सत्ता का विस्तार किया। शातकर्णि प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ किया और समस्त दक्षिण भारत पर अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। उसकी राजधानी गोदावरी नदी के तट पर स्थित प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) नामक नगरी थी। शातकर्णि प्रथम की मृत्यु के बाद शकों के आक्रमणों के फलस्वरूप सातवाहनों की शक्ति में ह्रास होने लगा और महाराष्ट्र में शक वंश का शासन आरम्भ हुआ, जो पश्चिमी क्षत्रप वंश कहा जाता है। सातवाहन वंश के तेईसवें शासक गौतमीपुत्र शातकर्णि ने पश्चिमी क्षत्रपों की शक्ति को नष्ट करके पुनः अपने वंश की शक्ति, समृद्धि और सत्ता स्थापित की। वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि ने उज्जैन के शक महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम की पुत्री से विवाह किया। रुद्रदामन ने उससे वह समस्त भू–भाग छीन लिया, जिसे उसने पश्चिमी क्षत्रपों को पराजित करके जीता था। सातवाहन वंश के सत्ताइसवें शासक यज्ञश्री (शातकर्णि) ने उज्जयिनी के क्षत्रपों से कुछ भू–भागों को पुनः अपने अधिकार में करके अपनी वंशकीर्ति पुनः स्थापित की। यज्ञश्री ने कई प्रकार की मुद्राएँ चलाईं, जिनमें से कुछ पर जलपोत भी अंकित हैं। इससे

चित्र 1.7 सतवाहन काल के सिक्के

प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य समुद्र तक विस्तृत था। इस वंश के सभी शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों और समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया तथा विदेशी यवनों और शकों से संघर्ष करते रहे। उन्होंने बौद्ध तथा जैन विहारों तथा उपाश्रयों को भी प्रभूत अनुदान दिये। उनके शासन काल में वाणिज्य तथा व्यापार, कृषि एवं अन्य उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन मिला तथा चाँदी, ताँबे, सीसे और कांसे की मुद्राओं का विशेष प्रचलन हुआ। उन्होंने ही सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भूमि अनुदान (अग्रहार) देने की प्रथा आरम्भ की। सातवाहन राजाओं ने पश्चिमी दकन में अनेक चैत्य एवं विहार बनवाये, जिनमें कार्ले का चैत्य सुप्रसिद्ध है। 40 मीटर लम्बा 15 मीटर ऊँचा यह चैत्य वास्तुकला का अद्‌भुत उदाहरण है।

गुप्त साम्राज्य (275–550 ई.)

उत्तर भारत में कुषाण सत्ता 230 ई. के लगभग समाप्त हो गई, तब मध्य भारत का एक बड़ा भू–भाग शक मुरण्डों के शासन में आ गया, जो कि 250 ई. तक शासन करते रहे। उसके बाद 275 ई. में गुप्त वंश अस्तित्व में आया। इस वंश का संस्थापक श्रीगुप्त था। समुद्रगुप्त ने स्वयं को 'प्रयाग प्रशस्ति' में श्रीगुप्त का प्रपौत्र कहा है। श्रीगुप्त के बाद घटोत्कच गुप्त शासक हुआ। इसकी उपाधि 'महाराज' थी।

चन्द्रगुप्त प्रथम (320–335 ई.) :

घटोत्कच के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्तवंश का शासक हुआ। इसने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। उसने लिच्छिवीवंशजा कुमारदेवी से विवाह किया। चन्द्रगुप्त प्रथम ने 319 ई. में एक संवत् चलाया, जो गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध है।

समुद्रगुप्त (335–380 ई.) :

चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उसका आदर्श 'दिग्विजय' और 'एकीकरण' था। वह साम्राज्यवाद में विश्वास रखता था। उसके दरबारी कवि हरिषेण ने उसकी सैनिक सफलताओं का विवरण इलाहाबाद प्रशस्ति अभिलेख में किया है। यह अभिलेख उसी स्तंभ पर उत्कीर्णित है, जिस पर अशोक का अभिलेख उत्कीर्णित है। इसके द्वारा जीते क्षेत्र को पांच समूहों में बांटा जा सकता है गंगा–यमुना दोआब के राज्य, पूर्वी हिमालय के राज्य, पूर्वी विन्ध्य क्षेत्र के आटविक राज्य, पूर्वी दकन व दक्षिण भारत के राज्य और शक एवं कुषाण राज्य। इलाहाबाद प्रशस्ति के अनुसार वह कभी भी युद्ध में नहीं हारा था। समुद्रगुप्त के पास एक शक्तिशाली नौसेना भी थी, जिससे वह विदेशों से सम्बन्ध सुदृढ़ कर सका। समुद्रगुप्त ने अवश्मेध यज्ञ भी किया। उसके सिक्कों पर 'अश्वमेध पराक्रमः' लिखा मिलता है। यह ललित कलाओं में भी निपुण था। उसे कविराज भी कहा गया है। वह संगीत में भी निपुण था। एक सिक्के पर उसकी आकृति वीणा बजाती हुई है। वह विष्णु का भक्त था, परन्तु दूसरे धर्मों का भी समान रूप से आदर करता था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय (380–412 ई.) :

चन्द्रगुप्त द्वितीय समुद्रगुप्त का पुत्र था। उसका नाम देवराज तथा देवगुप्त भी मिलता है। उसने अपने साम्राज्य को विवाह सम्बन्धों और विजयों द्वारा बढ़ाया। उसने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन से किया, जिसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावती अपने छोटे पुत्र को गद्‌दी पर बिठाकर राज्य की वास्तविक शासक बन गई। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिम मालवा व गुजरात को भी जीता। उज्जैन को उसने अपनी द्वितीय राजधानी बनाया। शक–विजय के पश्चात् उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की।

कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य (414–455 ई.) :

चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त शासक बना। कुमार गुप्त को ही नालंदा विश्वविद्यालय का संस्थापक माना जाता है। उसका राज्य सौराष्ट्र से बंगाल तक फैला था। अपने राज्य के अंतिम दिनों में उसे पुष्यमित्र के विद्रोह का सामना करना पड़ा था।

स्कन्दगुप्त (455–467 ई.) :

स्कन्दगुप्त ज्येष्ठ पुत्र न होते हुए भी राज्य का उत्तराधिकारी बना। जूनागढ़ अभिलेख द्वारा ज्ञात होता है कि स्कंदगुप्त ने मौर्यों द्वारा निर्मित सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार

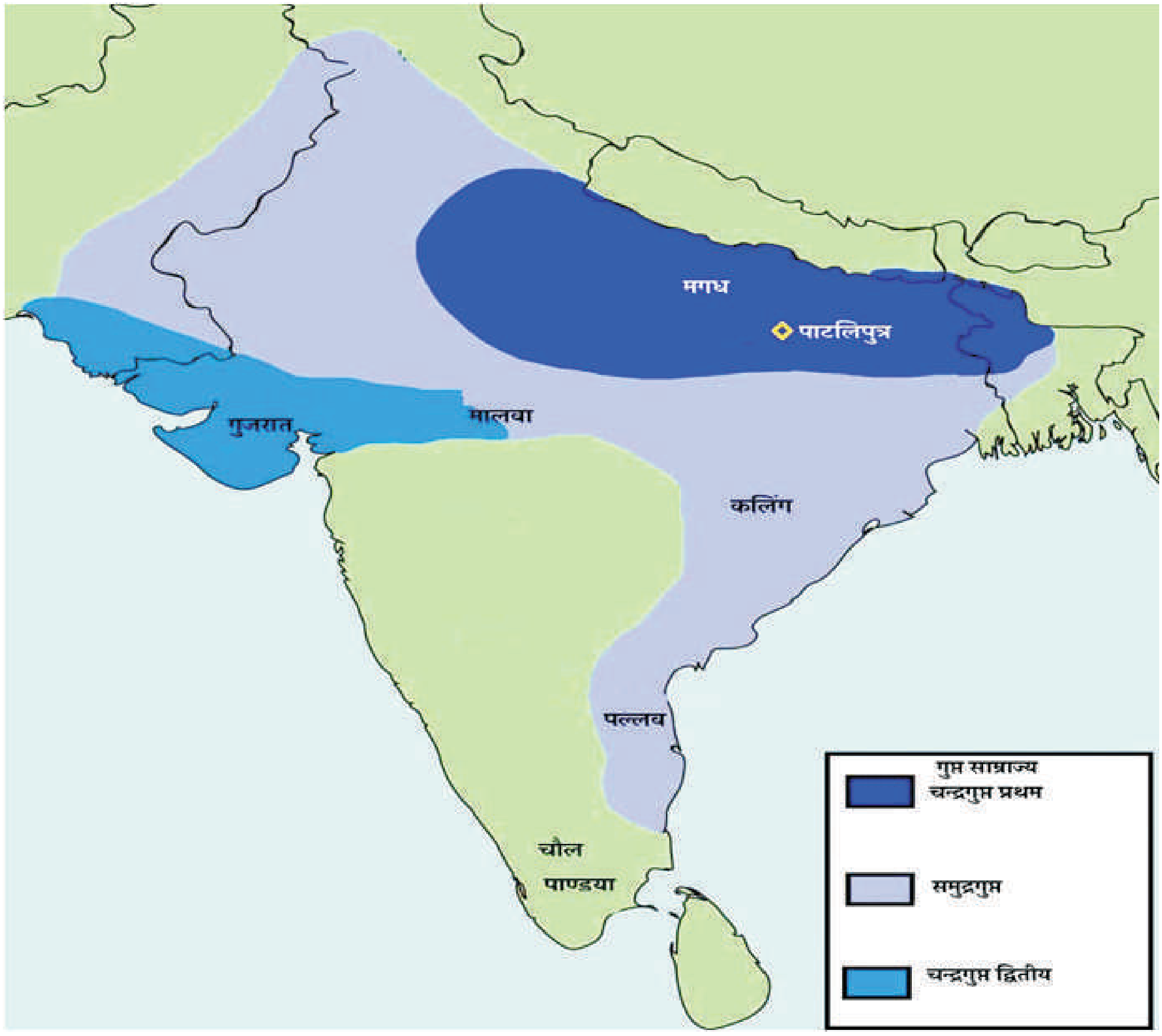

मानचित्र 1.8 गुप्त साम्राज्य

करवाया था। जूनागढ़ अभिलेख में इस बात का उल्लेख है कि सिंहासन पर बैठने के समय स्कंदगुप्त को म्लेच्छों के रूप में कुख्यात हूणों से जूझना पड़ा था। स्कंदगुप्त ने अंततः हूणों को पराजित कर दिया।

गुप्तवंश की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ :

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में गुप्त वंश का बहुत महत्व है। गुप्त सम्राट वैदिक धर्म को मानने वाले थे। समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथम ने तो अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म को भी प्रश्रय दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था। उसके विवरणों से पता चलता है कि गुप्त साम्राज्य सुशासित था, उसमें अपराध बहुत कम होते थे और कर भार भी बहुत कम था। राजकाज की भाषा संस्कृत थी। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक तथा 'रघुवंशम्' महाकाव्य के रचयिता कालिदास, 'मृच्छकटिकम्' नाटक के लेखक शूद्रक, 'मुद्राराक्षस' नाटक के लेखक विशाखदत्त तथा सुविख्यात कोशकार अमरसिंह गुप्तकाल में ही हुए। रामायण, महाभारत तथा मनुसंहिता अपने वर्तमान रूप में गुप्त काल में ही सामने आई। गुप्तकाल में आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त ने गणित तथा ज्योतिर्विज्ञान के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया। इसी काल में दशमलव प्रणाली का आविष्कार हुआ, जो बाद में अरबों के माध्यम से यूरोप तक पहुँची। उस काल की वास्तुकला, चित्रकला तथा धातुकला के प्रमाण झाँसी और कानपुर के अवशेषों, अजन्ता की कुछ गुफाओं, दिल्ली में स्थित लौहस्तम्भ, नालंदा में 80 फुट ऊँची बुद्ध की ताँबे की मूर्ति तथा सुलतानगंज स्थित साढ़े सात फुट ऊँची बुद्ध की ताँबे की प्रतिमा से मिलते हैं।

गुप्तकालीन समाज :

गुप्तकालीन समाज परम्परागत रूप से चार वर्णों में विभक्त था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। उनके कर्त्तव्य माने जाते थे – अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ और दान। क्षत्रिय का कर्त्तव्य राष्ट्र की रक्षा करना था। वैश्य का कार्य व्यापार और वाणिज्य करना था। शूद्र सेवा प्रदाता था। गुप्तकाल में जातियों के विषय में व्यवसाय का बंधन शिथिल होने लगा था, फिर भी वर्णों का आधार गुण और कर्म न होकर जन्म ही था। स्त्रियों का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। धार्मिक कृत्यों में पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। स्त्री–शिक्षा का प्रचलन भी था। पर्दा प्रथा नहीं थी। उस समय आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। स्वयंवर

चित्र 1.9 समुद्रगुप्त द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्रा

चित्र 1.10 चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्रा

प्रथा भी विद्यमान थी। गुप्त काल में मिश्रित जातियाँ–मूर्द्धावशिक्त, करण, अम्बष्ठ, पारशव आदि उग्र थीं। कायस्थ गुप्त युग में एक वर्ग था, परन्तु बाद में यह एक जाति के रूप में अस्तित्व में आ गया। गुप्तकालीन साहित्य में नारी का आदर्श चित्रण है। पुत्र के अभाव में पुरुष की संपत्ति पर उसकी पत्नी का प्रथम अधिकार होता था।

वर्धन वंश (पुष्यभूति वंश) –

छठी शताब्दी ई. में दिल्ली के निकट थानेश्वर में पुष्यभूति से, जो शिव का उपासक था, इस वंश का प्रारम्भ हुआ। इस वंश में तीन राजा हुए – प्रभाकरवर्धन राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद सिंहासन पर उसका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन बैठा, किन्तु राज्याभिषेक के बाद राज्यवर्धन को युद्धों में उलझना पड़ा और बंगाल के गौड़ शासक शशांक द्वारा 606 ई. में उसका वध भी कर दिया गया। उसके बाद उसका छोटा भाई हर्षवर्धन (606–47 ई.) शासक बना, जिसने चालीस वर्ष तक राज्य करके अपनी कीर्ति का विस्तार किया। वह निस्संतान था, अतः उसकी मृत्यु के साथ ही पुष्यभूति वंश का अंत हो गया।

जिस समय हर्ष सिंहासन पर बैठा, राज्य की स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। गौड़ (बंगाल) के राजा शशांक ने उसके बड़े भाई राज्यवर्धन का वध कर डाला था और उसकी छोटी बहिन राजश्री अपने प्राणों की रक्षा के लिए किसी अज्ञात स्थान पर चली गई थी। हर्षवर्धन ने शीघ्र ही अपनी बहिन को ढूँढ़ निकाला और कामरूप के राजा भास्करवर्मा से संधि करके शशांक के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेज दी। यद्यपि दक्षिण में उसकी सेनाओं को लगभग 620 ई. में चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने नर्मदा के तट से पीछे खदेड़ दिया था। हर्ष के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतों, दक्षिण में नर्मदा नदी के तट, पूर्व में गंजाम तथा पश्चिम में वल्लभी तक विस्तृत थीं। कन्नौज इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी।

हर्ष ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। वह शिव और सूर्य की उपासना करता था। बाद में उसका झुकाव महायान बौद्ध धर्म की ओर अधिक हो गया। वह प्रति पाँचवे वर्ष, प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम पर, एक महोत्सव करके दान आदि करता था। चीनी यात्री ह्वेन्सांग भी इस प्रकार के छठे महोत्सव में सम्मिलित हुआ था।

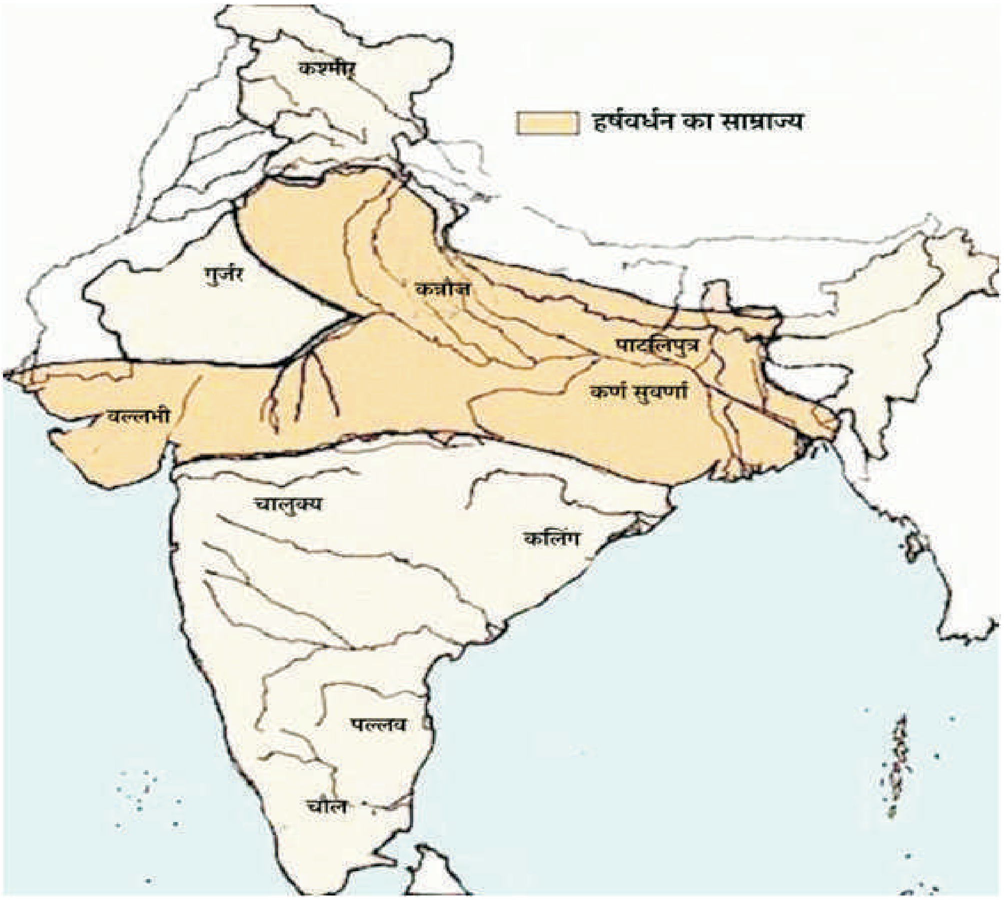

चित्र 1.11 हर्षवर्धन का साम्राज्य

चित्र 1.12 सम्राट हर्षवर्धन

पाल वंश –

इस वंश का उद्भव बंगाल में लगभग 750 ई. में गोपाल से माना जाता है। पालवंश का दूसरा शासक धर्मपाल इस वंश का सबसे महान् राजा था। उसने अपना राज्य कन्नौज तक विस्तृत किया और प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के साथ हुए त्रिकोणात्मक संघर्ष में भी अपने राज्य को सुरक्षित रखा। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी देवपाल ने भी कई युद्धों में विजय प्राप्त की। वह अपनी राजधानी को पाटलिपुत्र से बंगाल ले गया। उसकी राजसभा में सुमात्रा के राजा बालपुत्र देव का दूत आया था। देवपाल (810–850 ई.) के बाद पालवंश की राज्यशक्ति शासकों की निर्बलता तथा गुर्जर–प्रतिहार राजाओं के आक्रमणों के कारण क्षीण होने लगी। नवें राजा महीपाल प्रथम के राज्यकाल में चोल राजा राजेन्द्र प्रथम ने लगभग 1023 ई. में गंगा तक के प्रदेशों को जीत लिया। बारहवीं शताब्दी के मध्य तक पालवंश की शक्ति क्षीण हो गई।

पालवंशी राजा बौद्ध थे और उनके राज्यकाल में बौद्ध शिक्षा केन्द्रों की बड़ी उन्नति हुई। नालन्दा तथा विक्रमशिला के प्रसिद्ध महाविहारों को उनका संरक्षण प्राप्त था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अतिशा दसवें पाल राजा नयपाल के राज्यकाल में तिब्बत के राजा के निमंत्रण पर वहाँ भी गया था। पालवंशी राजा कला तथा वास्तुकला के महान प्रेमी थे। उन्होंने धीमान तथा विटपाल जैसे महान शिल्पियों को संरक्षण प्रदान किया। पाल–युग के अनेक जलाशय दीनापुर जिले में अभी भी बचे हुए हैं।

राष्ट्रकूट वंश –

इस राजवंश की स्थापना दन्तिदुर्ग ने 736 ई. में की थी। उसने नासिक को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश में 14 शासक हुए।

दन्तिदुर्ग वातापी के चालुक्यों के अधीन सामन्त था। उसने अंतिम चालुक्य शासक कीर्तिवर्मा द्वितीय को पराजित करके दक्षिण में चालुक्यों की सत्ता समाप्त कर दी। कृष्ण प्रथम ने एलोरा के सुप्रसिद्ध कैलाशनाथ मन्दिर का निर्माण कराया। वंश के चौथे शासक ध्रुव ने गुर्जर प्रतिहार शासक वत्सराज को पराजित किया और पाँचवे शासक गोविन्द तृतीय ने गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय और पाल शासक धर्मपाल को पराजित किया। उसने राष्ट्रकूटों के साम्राज्य को मालव प्रदेश से कांची तक विस्तृत कर दिया। छठा शासक अमोघवर्ष शान्तिप्रिय था, जिसने लगभग 64 वर्षों तक राज्य किया। उसी ने मान्यखेत (मालखेड) को राष्ट्रकूटों की राजधानी बनाया। अरब यात्री सुलेमान ने अमोघवर्ष की गणना विश्व के तत्कालीन चार महान् शासकों में की। कृष्ण द्वितीय तथा इन्द्र तृतीय ने कन्नौज के तत्कालीन शासक महीपाल को पराजित करके भागने को विवश कर दिया। बारहवें शासक कृष्ण तृतीय के शासनकाल में राष्ट्रकूटों का दक्षिण के चोल शासकों से एक दीर्घकालीन संघर्ष आरंभ हुआ।

राष्ट्रकूटों का पराभव कल्याणी के चालूक्यों द्वारा हुआ। चालुक्य शासक तैलप ने 973 ई. में इस वंश के कर्क द्वितीय को पराजित करके मान्यखेत पर अधिकार कर लिया। राष्ट्रकूट शासक वैदिक धर्म के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कई भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। वे संस्कृत तथा कन्नड़ साहित्य के पोषक थे। अरबों ने इस वंश के शासकों को बल्हरा (बल्लराज) सम्बोधित किया है।

• गुर्जर–प्रतिहार वंश –

इस राज्य की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामंत द्वारा 725 ई. में गुजरात में हुई, अतएव इसका नाम 'गुर्जर प्रतिहार' पड़ा। नागभट्ट प्रथम बड़ा वीर था। उसने सिंध की ओर से होने वाले अरबों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया। वत्सराज इस वंश का पहला शासक था, जिसने सम्राट की पदवी धारण की। वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने 816 ई. के लगभग गंगा की घाटी पर हमला किया और कन्नौज पर अधिकार कर लिया। वह अपनी राजधानी भी कन्नौज ले आया। नागभट्ट द्वितीय राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय से पराजित हुआ। उसके वंशज कन्नौज तथा आसपास के क्षेत्रों पर 1018–19 ई. तक शासन करते रहे। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा भोज प्रथम था, जो मिहिरभोज के नाम से भी जाना जाता है और जो नागभट्ट द्वितीय का पौत्र था। अरब व्यापारी सुलेमान इसी के समय भारत आया था। अगला सम्राट महेन्द्रपाल था, जो 'कर्पूरमंजरी' नाटक के रचयिता महाकवि राजशेखर का शिष्य और संरक्षक था। महेन्द्र का पुत्र महिपाल राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय से बुरी तरह पराजित हुआ। महिपाल के समय गुर्जर–प्रतिहार राज्य का पतन होने लगा। उसके बाद के राजाओं – भोज द्वितीय, विनायकपाल, महेन्द्रपाल द्वितीय, देवपाल, महिपाल द्वितीय और विजयपाल ने 1013 ई. तक अपने राज्य को कायम रखा। महमूद गजनवी के हमले के समय कन्नौज का शासक राज्यपाल था। राज्यपाल बिना लड़े भाग खड़ा हुआ। बाद में उसने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। इससे आसपास के राजपूत राजा बहुत नाराज हुए। महमूद गजनवी के लौट जाने पर कालिंजर के चन्देल राजा गण्ड के नेतृत्व में राजपूत राजाओं ने उसे मार डाला और उसके स्थान पर त्रिलोचनपाल को गद्दी पर बैठाया। कन्नौज में गहड़वाल अथवा राठौर वंश का उद्भव होने पर 11वीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में बाड़ी के गुर्जर–प्रतिहार वंश को सदा के लिए उखाड़ दिया गया। गुर्जर प्रतिहार वंश के शासकों ने अरबों को आगे नहीं बढ़ने दिया।

चोल वंश (उत्तरवर्ती चोल राज्य) :

यह प्राचीन दक्षिणापथ के तीन प्रमुख राज्यों में से एक था। अन्य दो राज्य थे – पाण्ड्य और चेर अथवा केरल। अशोक के अभिलेखों में इस राज्य का वर्णन एक स्वतंत्र राज्य के रूप में हुआ है। चोल राज्य के निवासी तमिलभाषी थे। उन्होंने तमिल भाषा में उच्च कोटि के साहित्य लेखन को प्रोत्साहित किया। तिरुवल्लुवर रचित 'कुरल' इसका अच्छा उदाहरण है। करिकाल (लगभग 100 ई.) चोलवंश का एक राजा हुआ, जिसने पुहार या पुगार नगर की नींव डाली। उसने सिंहल से युद्ध किया और युद्धबंदियों से कावेरी नदी के किनारे सौ मील लम्बे बाँध का निर्माण कराया। वह चोलों की राजधानी को उरगपुर (उरयूर) से कावेरीपत्तनम् ले गया। चोल राजा विजयालय के पुत्र और उत्तराधिकारी आदित्य (लगभग 880–907 ई.) ने पल्लव नरेश अपराजित को हराया था। आदित्य के पुत्र परान्तक प्रथम ने पल्लवों की शक्ति को पूरी तरह कुचल दिया था। उसने पाण्ड्यों की राजधानी मदुरा पर भी अधिकार कर लिया था।

चोल राजराज प्रथम (985–1013 ई.) सम्पूर्ण मद्रास, मैसूर, कूर्ग और सिंहलद्वीप (श्रीलंका) को अपने अधीन करके पूरे दक्षिणी भारत का एकछत्र सम्राट बन गया था। उसने अपनी राजधानी तंजोर में भगवान शिव का राजराजेश्वर (वृहदेश्वर) मंदिर बनवाया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम (1016–44 ई.) के पास शक्तिशाली नौसेना थी, जिसने पेगू, मर्तबान तथा अण्डमान–निकोबार द्वीपों को जीता। उसने बंगाल और बिहार के शासक महिपाल से युद्ध किया। उसकी सेनाएँ कलिंग पार करके ओड़ (उड़ीसा), दक्षिण कोसल, बंगाल और मगध होती हुई गंगा तक भी पहुंची। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने 'गंगैकोंड' की उपाधि धारण की। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी राजाधिराज (1044–54 ई.) चालुक्य राजा सोमेश्वर के साथ हुए कोप्पम के युद्ध में मारा गया, परन्तु वीर राजेन्द्र (1034–69 ई.) ने चालुक्यों को कुडल–संगमम् के युद्ध में परास्त कर पिछली हार का बदला ले लिया। चोलों में शीघ्र ही उत्तराधिकार के लिए युद्ध छिड़ गया। इसके फलस्वरूप सिंहासन राजेन्द्र कुलोतुंग प्रथम (1070–1122 ई.) को प्राप्त हुआ। राजेन्द्र कुलोत्तुंग की मां चोल राजकुमारी और पिता चालुक्य राज्य का स्वामी था। इस प्रकार कुलोत्तुंग ने चालुक्य–चोलों के एक नये वंश की स्थापना की। उसने चालीस वर्षों तक शासन किया।

चोल प्रशासन :

चोलों का प्रशासन ग्राम–पंचायत प्रणाली पर आधारित था। प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण चोल राज्य छः प्रांतों में बँटा हुआ था, जिनको 'मण्डलम्' कहा जाता था। मण्डलम् के उप–विभाग 'कोट्टम्' कोट्टम के उपविभाग 'नाडु', 'कुर्रम' और ग्राम होते थे। अभिलेखों में नाडु की सभा को नाट्टर और नगर की श्रेणियों को 'नगरतार' कहा गया है। गाँव के प्रतिनिधि प्रतिवर्ष नियमतः निर्वाचित होते थे। प्रत्येक मण्डलम् को तो स्वायत्तता

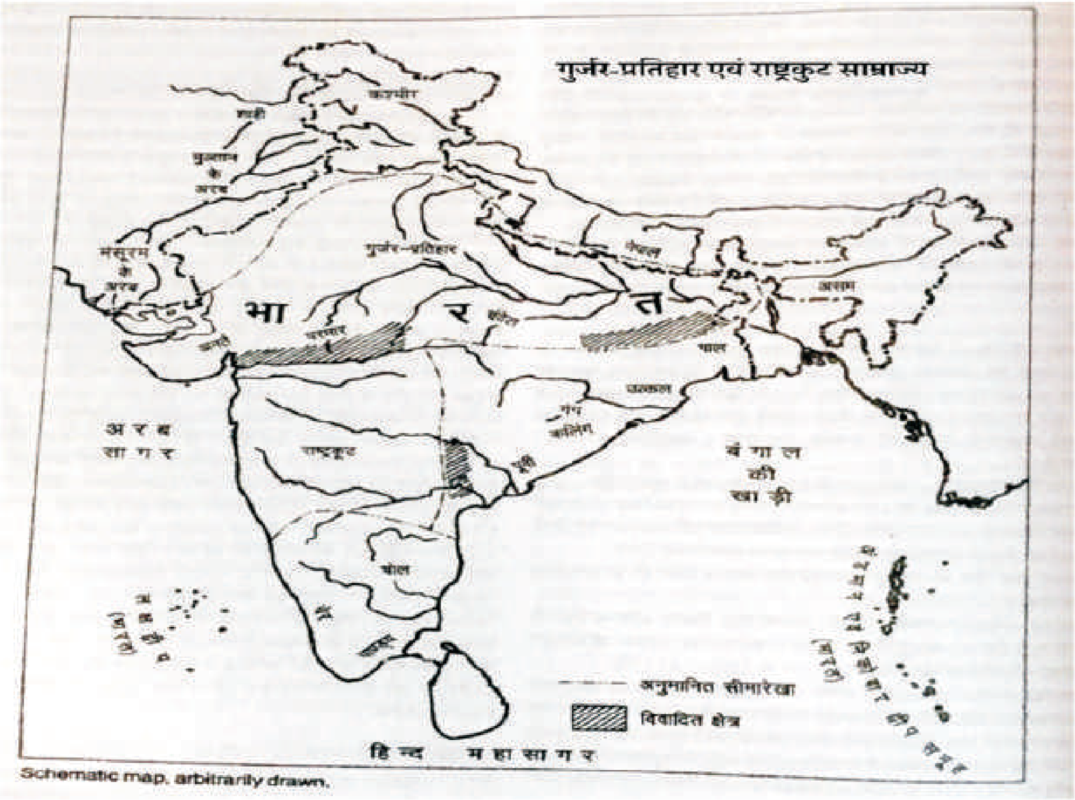

मानचित्र 1.13 राष्ट्रकूट, गुर्जर–प्रतिहार, चोल साम्राज्य

चित्र 1.14 चोल कालीन मन्दिर

चित्र 1.15 नटराज (शिव) की प्रतिमा

प्राप्त थी, लेकिन राजा को नियंत्रित करने के लिए कोई केन्द्रीय विधानसभा नहीं थी। भूमि की उपज का लगभग छठा भाग सरकार को लगान के रूप में मिलता था। लगान अनाज में या स्वर्ण मुद्राओं में दिया जा सकता था। चोल राज्य में प्रचलित सोने का सिक्का 'कासु' कहलाता था, जो 16 औंस का होता था। चोल राजाओं के पास विशाल स्थल सेना के साथ–साथ मजबूत जहाजी बेड़ा भी था। चोल राजाओं ने सिंचाई की बड़ी–बड़ी योजनाएँ पूरी की।

चोल कला – चोलों ने पल्लवों की स्थापत्य कला को आगे बढ़ाया। चोलों की द्रविड़ मंदिर शैली की कुछ विशेषताएँ हैं– वर्गाकार विमान, मण्डप, गोपुरम्, कलापूर्ण स्तम्भों से युक्त वृहद्सदन, सजावट के लिए पारम्परिक सिंह (चालि), ब्रैकेट तथा संयुक्त स्तम्भों आदि का होना। राजराज प्रथम का तंजौर का शिव मंदिर (राजराजेश्वर मंदिर) द्रविड़ शैली का एक शानदार नमूना है। दक्षिण भारत में नहरों की प्रणाली चोलों की देन है। चोल मंदिरों में चिदम्बरम् और तंजौर के मंदिर सर्वोत्कृष्ट हैं। चोल युग की नटराज शिव की कांसे की मूर्तियां भी सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं। मंदिरों की गोपुरम् शैली का विकास इसी युग में हुआ।

समाज – चोल राजा शैव धर्मानुयायी थे। राजाधिराज के लेखों में अश्वमेध यज्ञ का भी उल्लेख है। समाज में स्त्रियां सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी। दास और देवदासी प्रथा भी प्रचलित थी।

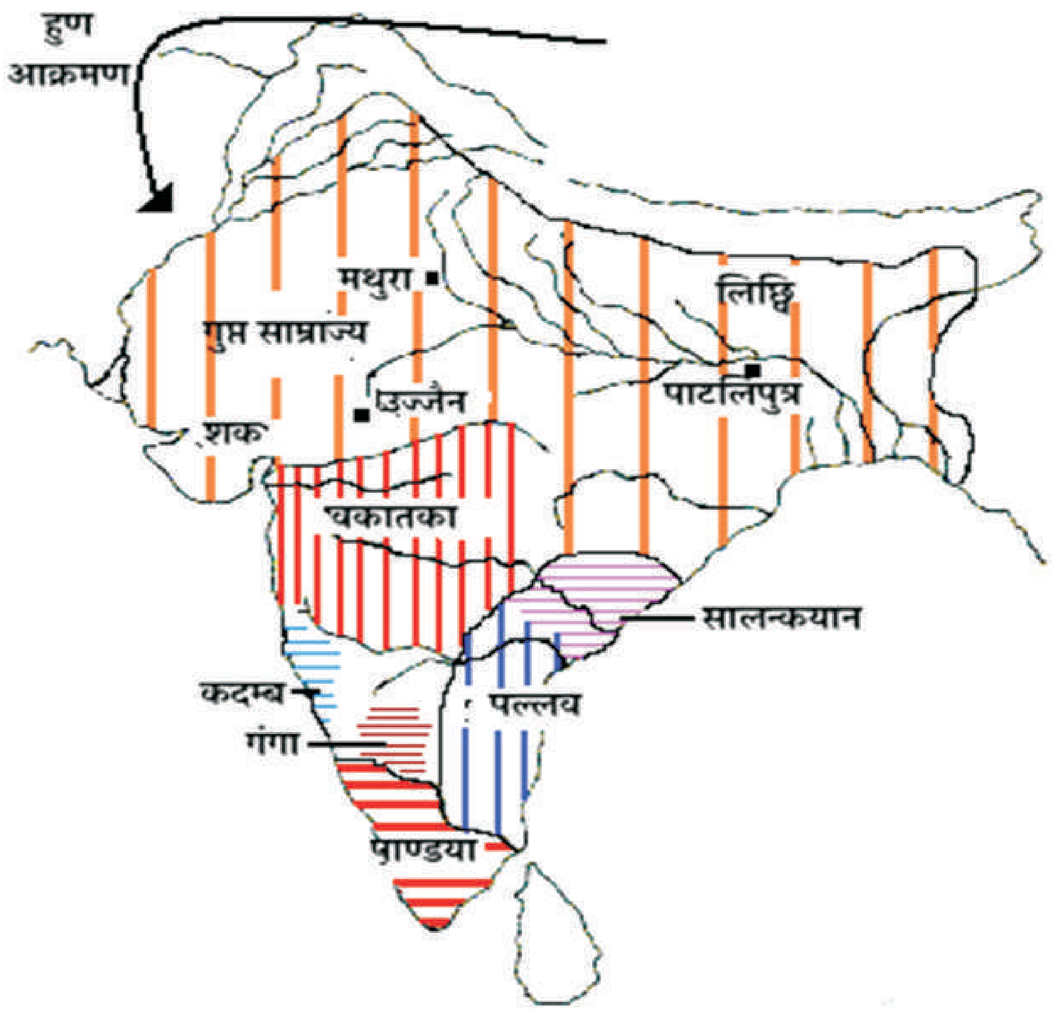

मानचित्र 1.16 पल्लव साम्राज्य

पल्लव वंश :

इस वंश के शासक अर्काट, मद्रास, त्रिचनापल्ली तथा तंजौर के आधुनिक जिलों पर राज्य करते थे। शिलालेखों में पहले पल्लव राजा का उल्लेख कांची के विष्णुगोप का मिलता है। पल्लवों में सिंहविष्णु छठी शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में सिंहासन पर बैठा। उसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक पल्लवों ने राज्य किया। प्रमुख पल्लव राजाओं के नाम महेन्द्रवर्मा प्रथम (लगभग 600–25 ई.), नरसिंहवर्मा प्रथम, महेन्द्रवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा, नरसिंहवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा द्वितीय, नन्दीवर्मा, नन्दीवर्मा द्वितीय तथा अपराजित।

महेन्द्रवर्मा महान् वास्तु–निर्माता था। उसने पत्थरों को तराशकर अनेक मंदिर बनवाये। महेन्द्रवर्मा प्रथम ने 'मत्त विलास प्रहसन' नामक नाटक भी लिखा। उसने 'महेन्द्र' तालाब भी खुदवाया। उसे लगभग 610 ई. में चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने पराजित कर दिया। महेन्द्र के पुत्र तथा उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मा (महामल्ल) ने 642 ई. में पुलकेशिन द्वितीय को परास्त कर दिया और उसकी राजधानी वातापी पर अधिकार कर लिया, परंतु चालुक्यों ने 655 ई. में इस हार का बदला ले लिया। चालुक्य राजा विक्रमादित्य प्रथम ने पल्लव राजा परमेश्वरवर्मा को पराजित कर उसकी राजधानी कांची पर अधिकार कर लिया। प्रारम्भिक पल्लव राजाओं ने मामल्लपुरम् या महाबलीपुरम् नगर की स्थापना की और वहाँ पर पाँच रथ मंदिरों का निर्माण कराया। यहाँ चट्टानों को तराशकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। कांची में भी पल्लव राजाओं ने मंदिर बनवाये। पल्लव शासकों में कुछ विष्णु के उपासक थे और कुछ शिव के।

मानचित्र 1.18 पल्लवकालीन मंदिर

चालुक्य वंश :

चालुक्यवंशी पुलकेशिन प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ किया था। वातापी के चालुक्यों का तेरह वर्षो के व्यवधान (642–655 ई.) को छोड़कर 550 ई. से लेकर 757 ई. तक शासन किया। चालुक्य नरेशों में चौथा पुलकेशिन द्वितीय सबसे अधिक प्रख्यात है। उसने 608 ई. में शासन ग्रहण किया। उसका राज्य–विस्तार उत्तर में नर्मदा से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी तक था। 642 ई. में वह पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा द्वारा पराजित हुआ। पुलकेशिन के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम ने चालुक्य–शक्ति पुनः प्रतिष्ठित की। चालुक्य नरेश विक्रमादित्य द्वितीय ने 973 ई. में राष्ट्रकूट नरेश को परास्त कर दिया और कल्याणी को अपनी राजधानी बनाकर नये चालुक्य राज्य की स्थापना की। यह नया राज्य 973 ई. से 1200 ई. तक सत्तासीन रहा। कल्याणी के इस चालुक्य राज्य का एक लम्बे अर्से तक तंजौर के चोलवंशी शासकों से संघर्ष चला। सत्याश्रय नामक चालुक्य राजा को चोल नरेश राजराज ने परास्त किया। चालुक्य सोमेश्वर प्रथम ने इस अपमान का बदला न केवल चोल नरेश राजाधिराज को कोप्पम् के युद्ध में करारी हार देकर लिया, वरन् इस युद्ध में उसने राजाधिराज का वध भी कर दिया। सातवें नरेश विक्रमादित्य षष्ठ ने, जो विक्रमांक के नाम से भी विख्यात था, कांची पर अधिकार कर लिया और प्रसिद्ध कवि विल्हण को संरक्षण प्रदान किया। विल्हण ने विक्रमादित्य के जीवन पर आधारित 'विक्रमांकदेवचरितं' नामक ग्रंथ लिखा। वातापी और कल्याणी के चालुक्य नरेशों ने हिन्दू होने पर भी बौद्ध और जैन धर्म को प्रश्रय दिया। चालुक्य राजाओं ने अनेक मंदिरों का निर्माण कराया। याज्ञवल्क्य स्मृति की 'मिताक्षरा' व्याख्या के लेखक प्रसिद्ध विधिवेत्ता विज्ञानेश्वर चालुक्यों की राजधानी कल्याणी में ही रहते थे। 'मिताक्षरा' को हिन्दू कानून का एक अधिकारिक ग्रंथ माना जाता है।

(iii) बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण – शक, हूण एवं कुषाण :

शकः– मध्य एशिया की लड़ाकू जनजाति थी, जिसने पश्चिमी अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यहाँ से शक बोलन दर्रे से होकर लगभग 71 ई.पू. में भारत आए। 'रामायण' एवं 'महाभारत' में शक बस्तियों को कम्बोजों और यवनों के साथ रखा गया है। कालकाचार्य कथानक में भारत पर शकों के आक्रमण का उल्लेख मिलता है, जिसमें उन्हें सगकुल (शक–कुल) कहा गया है। सिन्धु प्रदेश को जीतकर उन्होंने सौराष्ट्र में शक–शासन की स्थापना की। मुद्राओं और लेखों से स्पष्ट है कि इनकी एक शाखा ने उत्तरापथ और मथुरा में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और कालान्तर में वे अवन्ति, सौराष्ट्र और महाराष्ट्र में फैल गये।

तक्षशिला के शक शासकों में मावेज एवं एजेज के नाम आते हैं। तक्षशिला में शक शक्ति का विनाश, पल्लवों द्वारा हुआ। हमामश और हगान मथुरा के प्रारम्भिक शक क्षत्रप थे। मथुरा से प्राप्त सिंह–शीर्षक–लेख में बाद के शक शासक राजबुल को महाक्षत्रप कहा गया है। मथुरा के शकों ने पूर्वी पंजाब तक अपनी सीमा का विस्तार कर लिया था। मथुरा में शक शक्ति का विनाश कुषाणों द्वारा हुआ। पश्चिमी भारत में शकों के क्षहरात वंश के भूमक तथा नहपान दो शासक ज्ञात हैं। इन शक शासकों ने सातवाहनों से कुछ प्रदेश जीते और महाराष्ट्र काठियावाड़ और गुजरात पर शासन किया। नहपान के समय भारत तथा पश्चिमी देशों के बीच समृद्ध व्यापारिक सम्बन्ध कायम था।

जोगलथाम्बी नामक स्थान से मिले सिक्कों से यह प्रमाणित होता है कि नहपान गौतमीपुत्र शातकर्णि से पराजित हुआ था। नासिक लेख में गौतमीपुत्र शातकर्णि को क्षहरात वंश का उन्मूलक कहा गया है। उज्जयिनी तथा काठियावाड़ के शक शासकों में चस्टन का नाम आता है, जिसने उज्जयिनी में शक राजवंश की स्थापना की थी। इस वंश के शासकों ने अपने लेखों तथा मुद्राओं पर शक संवत् का उपयोग किया था। चस्टन का पौत्र रूद्रदामन महत्त्वपूर्ण शासक हुआ, जिसके बारे में जानकारी जूनागढ़ लेख से प्राप्त होती है। रूद्रदामन का साम्राज्य पूर्वी–पश्चिमी मालवा, द्वारका, जूनागढ़, साबरमती नदी मारवाड़, सिन्धु–घाटी, उत्तरी कोंकण एवं विन्ध्य पर्वत तक फैला हुआ था। मुद्राओं से प्रदर्शित होता है कि चस्टन का वंश 305 ई. में समाप्त हो गया।

हूणः

हूण मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी, जिसने शकों की भांति भारतवर्ष में उत्तर–पश्चिमी सीमा की ओर से प्रवेश किया। ये 'दैत्य' भी पुकारे जाते थे। सर्वप्रथम 458 ई. के लगभग स्कन्दगुप्त के समय इनका आक्रमण हुआ, जिसमें उनकी पराजय हुई। कालान्तर में तोरमाण नामक सरदार ने गुप्त साम्राज्य को नष्ट–भ्रष्ट करके पंजाब, राजपूताना, सिन्ध और मालवा पर अधिकार कर 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। तोरमाण का पुत्र महिरकुल था जिसका राज्य 510 ई. से आरम्भ हुआ। स्यालकोट इसकी राजधानी थी। बौद्ध भिक्षुओं से महिरकुल को घृणा थी। उसने अनेक मठों एवं स्तूपों को नष्ट किया। मालवा के शासक यशोधर्मा ने इसे पराजित किया। पराजित होने के बाद यह कश्मीर चला गया और कश्मीर में अपना राज्य कायम किया। हूणों के आक्रमण के कारण गुप्त साम्राज्य नष्ट हो गया और भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गयी। देश पुनः छोटे–छोटे टुकड़ों में बँट गया।

कुषाण वंश :

कुषाणों को यूचि या तौचेरियन भी कहा जाता है। यूचि कबीला पांच भागों में बंट गया था। इन्हीं में से एक कबीले ने भारत के कुछ भागों पर शासन किया।

कुजुल कडफिसस प्रथम (15ई.–65 ई.) : यह अपनी जाति के गौरव का संस्थापक था। इसने दक्षिणी अफगानिस्तान, काबुल, कन्धार और पार्थिया के एक भाग को अपने राज्य में मिला लिया। इसने वैदिक धर्म को अंगीकार किया।

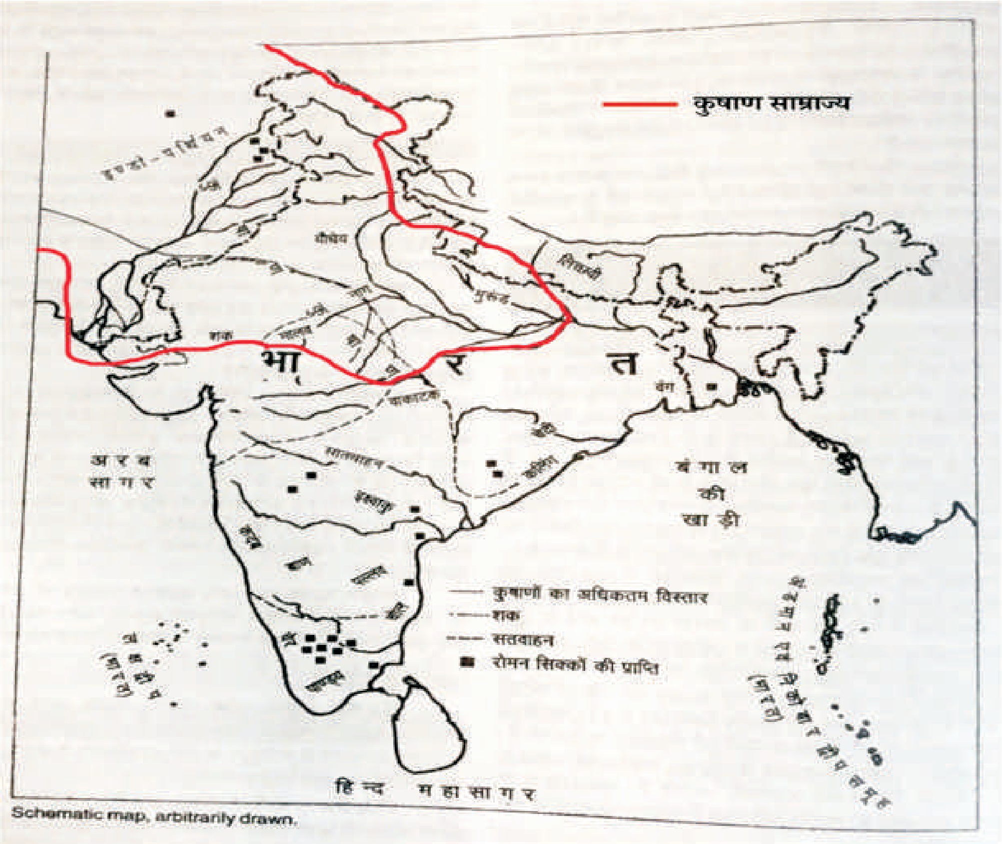

मानचित्र 1.19 कुषाण साम्राज्य

विम कडफिस द्वितीय (65–75 ई.) : भारत के एक विशाल क्षेत्र पर इसका राज्य था। यह शैव मत का अनुयायी था। इसकी कुछ मुद्राओं पर त्रिभुज, त्रिशूलधारी, व्याघ्रचर्माग्राही, नन्दी अभिमुख भगवान शिव की आकृति अंकित है। इसने भारत में पहली बार अपने नाम के सोने के सिक्के चलाए।

कनिष्क :

यह भारत के प्रमुख कुषाण राजाओं में माना जाता है। परम्परा के अनुसार इसके समय में कश्मीर के कुंडलवन में आचार्य पार्श्व की अध्यक्षता में चौथी बौद्ध संगीति सम्पन्न हुई थी। इसकी प्रथम राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) एवं दूसरी राजधानी मथुरा थी। इसने 78 ई. में नया संवत् चलाया, जिसे शक संवत् के नाम से जाना जाता है। कनिष्क ने कश्मीर को जीतकर वहां 'कनिष्कपुर' नामक नगर बसाया। उसने काशगर, यारकन्द व खोतान पर भी विजय प्राप्ता की। महास्थान (बोगरा) में पायी गयी सोने की मुद्रा पर कनिष्क की एक खड़ी मूर्ति अंकित है। मथुरा जिले में कनिष्क की एक प्रतिमा मिली है। इस प्रतिमा में उसने घुटने तक चोगा और भारी बूट पहने हुए हैं। एक तांबे के सिक्के पर कनिष्क को वेदी पर बलि देते दिखाया गया है। कनिष्क के राजदरबार में पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष जैसे बौद्ध विचारक, नागार्जुन, जैसे प्रख्यात गणितज्ञ और चरक जैसे चिकित्सक विद्यमान थे। बौद्ध धर्म की महायान शाखा का अभ्युदय और प्रचार कनिष्क के समय में ही हुआ।

चित्र 1.20 कनिष्क

उत्तर भारत में कुषाण शासकों की सत्ता लगभग 230 ई. तक बनी रही। इस समय रोम से भारत का व्यापार काफी लाभप्रद स्थिति में था, जिससे भारत में आर्थिक समृद्धि आई।

आत्मसातीकरण –

शक, हूण एवं कुषाण विदेशी जातियाँ थी। इन्होंने शासन तो किया, परन्तु धीरे–धीरे इनका भारतीय समाज एवं संस्कृति में आत्मसातीकरण भी हो गया। भारतीयों की उदार प्रवृत्ति के कारण ये बर्बर कबीलाई जातियाँ जो समाज का अंग बन गईं। कुषाण शासकों में तो वैदिक धर्म पालन एवं शैव मत की निष्ठा सर्वमान्य रही। कनिष्क द्वारा की गई बौद्ध धर्म की सेवा तो उसे भारत में महान् राजाओं में अधिष्ठित करती है।

चित्र 1.21 कुषाणकालीन सिक्के

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. महाभारत, बौद्ध साहित्य एवं चाणक्य के अर्थशास्त्र से महाजनपदों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

2. चन्द्रगुप्त मौर्य के विशाल साम्राज्य में काबुल, हेरात, कंधार, बलूचिस्तान, पंजाब, गंगा—यमुना का मैदान, बिहार, बंगाल, गुजरात, विन्ध्य तथा कश्मीर के भू—भाग सम्मिलित थे।

3. अशोक ने मनुष्य की नैतिक उन्नति हेतु जिन आदर्शों का प्रतिपादन किया उन्हें 'धम्म' कहा गया। उसके अनुसार पाप कर्म से निवृत्ति, विश्व—कल्याण, दया, दान, सत्य एवं कर्मशुद्धि ही धम्म है।

4. अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं, जबकि पश्चिमोत्तर भारत से प्राप्त उसके अभिलेख अरमाइक से निष्पन्न खरोष्ठी लिपि में है। अशोक के अभिलेखों को पढ़ने में पहली बार सफलता जेम्स प्रिंसेस को प्राप्त हुई।

5. कौटिल्य के अनुसार राज्य के सात अंग राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र हैं।

6. सातवाहन वंश के सभी शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों और वर्णाश्रम व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया तथा यवनों और शकों से संघर्ष किया।

7. इलाहाबाद प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त कभी युद्ध नहीं हारा था।

8. आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त ने गुप्तकाल में गणित तथा ज्योर्तिविज्ञान के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया।

9. गुर्जर—प्रतिहार वंश की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामंत ने 725 ई. में की थी। उसके राज्य की स्थापना गुजरात में हुई, अत एवं उसके वंश का नाम गुर्जर—प्रतिहार पड़ा।

10. चोल शासक राजराज प्रथम ने अपनी राजधानी तंजोर में भगवान शिव का राजराजेश्वर (वृहदेश्वर) मंदिर बनवाया। चोल युग के कांसे की शिव मूर्तियाँ कला की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हैं।

11. साहवाहन गौतमीपुत्र सातकर्णि को नासिक लेख में शकों को नष्ट करने के कारण 'क्षहरात वंश उन्मूलक' कहा गया है।

12. कनिष्क ने 78 ई. में नया संवत् चलाया, जिसे शक संवत् के नाम से जाना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :—

1. राजस्थान के प्रमुख महाजनपद कौन—कौन से हैं ?
2. बिन्दुसार के समय आए यूनानी राजदूत का क्या नाम था ?
3. पुराणों में अशोक का क्या नाम मिलता है ?
4. अंतिम मौर्य सम्राट कौन था ?
5. 'समाहर्त्ता' नामक अधिकारी का क्या कार्य था ?
6. कौटिल्य की पुस्तक का नाम बताइये ?
7. पतंजलि किस शासक के काल में हुए थे ?
8. सातवाहन वंश के सबसे प्रतापी राजा का नाम क्या था ?
9. 'इलाहाबाद प्रशस्ति' का लेखक कौन था? वह किस शासक का दरबारी कवि था?
10. स्कन्दगुप्त ने मौर्यों द्वारा निर्मित किस झील का जीर्णोद्धार करवाया?
11. हर्षवर्धन की साहित्यिक रचनाओं के नाम बताइये।
12. पालवंशी राजा किस धर्म के अनुयायी थे ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न —

1. महाजनपदों में उल्लिखित गणराज्यों के नाम बताइये।
2. अशोक के 'धम्म' का सार लिखिए।
3. समुद्रगुप्त के सांस्कृतिक योगदान को स्पष्ट कीजिये।
4. राष्ट्रकूट वंश का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. चोल प्रशासन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. पल्लव वंश के बारे में आप क्या जानते हैं ?
7. कनिष्क का योगदान बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न :—

1. महाजनपदों का उल्लेख करते हुए राजस्थान के प्रमुख जनपदों का परिचय दीजिए।
2. मौर्यकालीन प्रशासन एवं समाज का वर्णन कीजिए।
3. गुप्तवंश के प्रमुख शासकों का वर्णन करते हुए इस काल की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर एक लेख लिखिए।
4. दक्षिण के चोल एवं चालुक्य राज्यों का सविस्तार वर्णन करें।

अध्याय 2

संघर्षकालीन भारत – 1206 ई. से 1757 ई. तक

भारत पर लगातार विदेशी आक्रान्ताओं ने आक्रमण किए। भारतीयों ने इन आक्रमणों का वीरतापूर्वक प्रतिरोध किया, संघर्ष किया। भारतीयों ने प्रारम्भिक अरबी एवं मुस्लिम आक्रान्ताओं को पराजित कर खदेड़ दिया। अमर खलीफा के समय 636 ई. में अरबों द्वारा पहला समुद्री आक्रमण ठाणे पर हुआ। किताब फुतुह–अल–बुल्दान में उल्लेख है कि अरबों का यह अभियान विफल रहा। इसके बाद बड़वास (भड़ौच) और सिन्ध के डेबाल बन्दरगाह पर अरबों का आक्रमण हुआ। ये आक्रमण भी असफल रहे। चचनामा में उल्लेख मिलता है कि डेबाल के संघर्ष में अरब सेना नायक मुधाइरा पराजित हुआ और मारा गया।

712 ई. में मुहम्मद बिन कासिम व सिन्ध के राजा दाहिर के मध्य भयानक संघर्ष हुआ। बाबा धुरी ने लिखा है कि ''महाभंयकर संघर्ष हुआ ऐसा जैसा कभी नहीं सुना गया''। चचनामा में उल्लेख है कि– ''काफिरों (गैर–मुस्लिम) ने अरबों को चारों ओर से जकड़ लिया और जिस बहादुरी और दृढ़ता से वे लड़े उसके कारण इस्लाम की पूरी फौज घबरा गई और तार–तार हो गई। इसी बीच संयोगवश एक तीर हाथी पर सवार राजा दाहिर के सीने पर लगा इस कारण राजा मृत्यु को प्राप्त हो गया। इसके बाद भी राजकुमार जैसिया व साम्राज्ञी रानी बाई किले की रक्षा के लिए डटे रहे।

महमूद गजनवी को कश्मीर के शाही शासक जयपाल और आनन्दपाल से कड़ा संघर्ष करना पड़ा। मोहम्मद गौरी को पृथ्वी राज चौहान के हाथों ही कई बार पराजित होना पड़ा। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी बनी की 1206 ई. तक भारत में मुस्लिम राज्य की शुरुआत हो गई। इसके उपरान्त भी भारतीयों द्वारा लगातार विदेशी शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष जारी रहा और यह संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन तक चलता रहा। भारतीयों ने प्रतिकार और संघर्ष को अनवरत रखा।

(i) दिल्ली सल्तनत (1206 से 1526 ई.) :

यामिनी, इल्बरी या गुलाम वंश : कुतुबुद्दीन ऐबक (1206 –1210 ई.) का राज्यारोहण 1206 ई. में हुआ। इसे 'लाखबख्श' भी कहा जाता है। इसकी राजधानी लाहौर थी। इसके दरबार में हसन निजामी को संरक्षण मिला था। कुतुबमीनार की पहली मंजिल ऐबक द्वारा बनवायी गई। कुतुबमीनार का शेष भाग इल्तुतमिश ने पूरा कराया। प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की स्मृति में कुबुतमीनार का निर्माण करवाया गया था। समकालीन इस्लामिक साहित्य में ऐसा उल्लेख है। सन् 1210 ई. में चौगान (पोलो) खेलते हुए घोड़े से गिरकर ऐबक की मृत्यु हुई।

इल्तुतमिश (1210–1236 ई.) :

यह ऐबक का दामाद एवं उत्तराधिकारी था। इसे मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संगठनकर्ता माना जा सकता है। 1226 ई. में इल्तुतमिश ने रणथम्भौर जीता। 1223 ई. में सुल्तान ने मालवा पर आक्रमण कर भिल्ला के दुर्ग को जीता। ग्वालियर और जालौर पर भी इसका अधिकार हो गया था। ख्वारिज्म शाह के पुत्र मंगबरनी को सहायता नहीं देकर इल्तुतमिश ने मंगोल चंगेज खाँ से दुश्मनी मोल नहीं ली।

रजिया सुल्तान (1236–40 ई.) :

रूक्नुद्दीन फिरोजशाह की हत्या के बाद इल्तुतमिश की पुत्री रजिया सुल्तान बनी। इल्तुतमिश ने रजिया को उत्तराधिकारी चुना था। परम्परावादी व कट्टरपंथी तुर्की अमीरों ने रजिया का विरोध किया। रजिया ने पर्दा त्याग दिया था, और पुरुषों के समान 'कुबा' (कोट) व 'कुलाह' (टोपी) पहनने लगी। उसने मलिक जमालुद्दीन याकूत (अबीसीनिया निवासी) को अमीर अखूर (अश्वशाला का प्रधान) नियुक्त किया, जिससे तुर्क अमीर नाराज हो गये। सरहिन्द के शासक के विद्रोह को शांत करने के अभियान में याकूत की हत्या कर दी गई। बाद में रजिया ने अल्तूनिया से विवाह कर लिया, परन्तु 1240 ई. में उन दोनों को मार डाला गया। 1240 से 1242 ई. तक बहरामशाह, 1242 से 1246 ई. मसूदशाह एवं 1246 से 1265 ई. तक नासिरूद्दीन महमूद ने सत्ता संभाली। ये सभी अयोग्य शासक थे। नासिरूद्दीन महमूद के पीछे वास्तविक बल गयासुद्दीन बलबन का था।

बलबन (1265–1296 ई.) :

उलुग खाँ (बलबन) इल्तुतमिश के चहलगानी (चालीस) नामक तुर्की दासों के प्रसिद्ध दल से सम्बन्धित था। वह 1265 ई. में यह गद्दी पर बैठा। मंगोलों का सामना करने के लिये एक सैन्य विभाग 'दीवाने आरिज' को पुनर्गठित किया। उसने सिजदा और पाबोस (सम्राट के सम्मुख झुककर उसके पैरों को चूमना) की प्रथा को दरबार में शुरू किया। बलबन दिल्ली सल्तनत के प्रशासनिक ढाँचे के निर्माताओं में प्रमुख था। उसने शत्रुओं के प्रति लौह और रक्त की नीति अपनायी, जिसमें पुरुषों को मार दिया जाता था व बच्चों और स्त्रियों को गुलाम बनाया जाता था। 1286 ई. में बलबन की मृत्यु के बाद अमीरों के दलीय संघर्ष ने खूनी रूप ले लिया। क्यूमर्स का वध कर 1290 ई. में जलालुद्दीन खिलजी ने स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया। बलबन का राजत्व सिद्धान्त प्रसिद्ध रहा है। बलबन की मान्यता थी कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। राजा साधारण जनता से अलग व्यक्तित्व है वह ईश्वर द्वारा प्रदत्त गुणों से युक्त है जो उसे शासन करने की शक्ति प्रदान करता है। बलवन तुर्क अमीरों के विद्रोह से परिचित था। इसी कारण उसने दरबार में कठोर अनुशासन बनाये रखा। कानून व्यवस्था की स्थिति को व्यवस्थित करना, चोरों, डाकुओं का दमन एवं राजपूत जमींदारों के शासन विरोधी विद्राहों को कुचलना उसके प्रमुख कार्य थे।

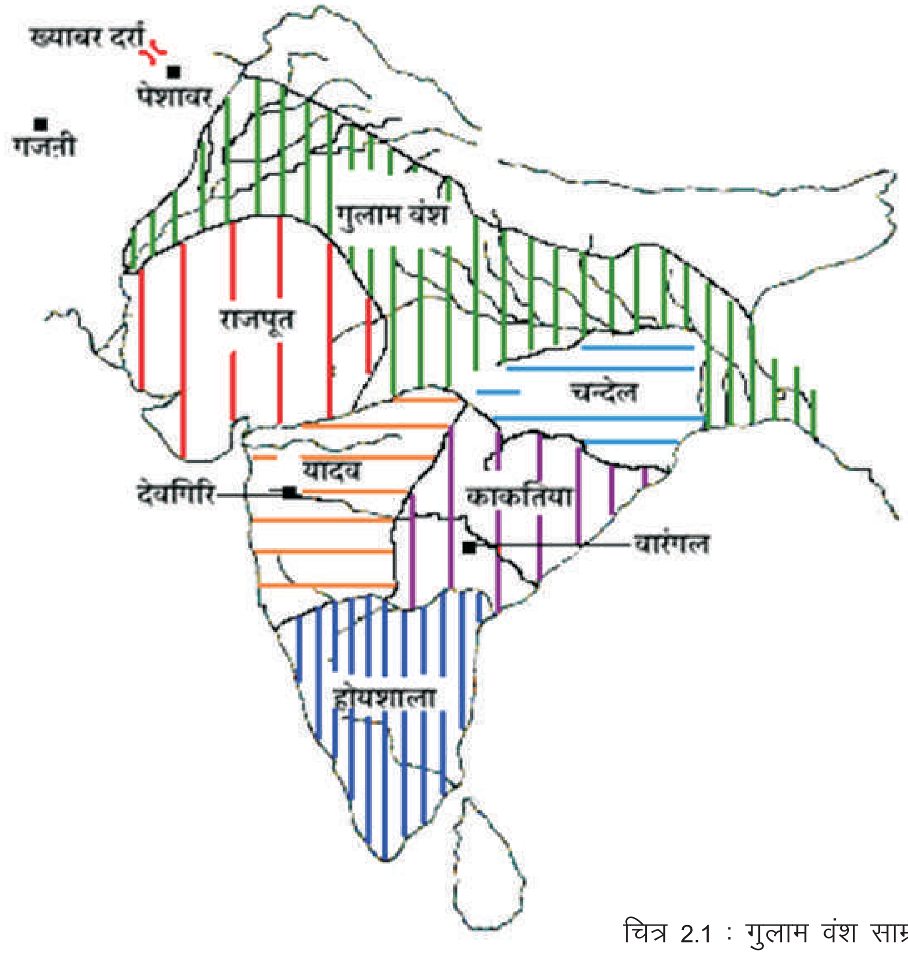

चित्र 2.1 : गुलाम वंश साम्राज्य

खिलजी वंश / साम्राज्य (1290–1320 ई.)– खिलजी वंश का प्रथम शासक जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (1290 ई.–1296 ई.) था जो में 70 वर्ष का था। इसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने इलाहाबाद में उसका 1296 ई. में धोखे से हत्या करवा दी और स्वयं सुल्तान बन बैठा। अपने 20 वर्षों के शासन में कुछ अपने सुधारों को लेकर अलाउद्दीन की चर्चा होती है। उसने सिक्कों पर अपना उल्लेख 'द्वितीय सिकंदर' के रूप में करवाया। उसके शासन में कश्मीर व बंगाल शामिल नहीं थे। गुजरात के बघेला राजपूत राजा राय कर्णदेव के खिलाफ सैन्य अभियान किया। अलाउद्दीन ने 1301 ई. में रणथम्भौर और 1303 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण कर लूटा। गुजरात अभियान के दौरान उसे अपार धन सम्पदा प्राप्त हुई साथ ही एक हिन्दु से धर्मान्तरित मुस्लिम सेनानायक मलिक काफूर का साथ मिला। इस मलिक काफूर की सहायता से ही अलाउद्दीन खिलजी दक्षिण भारत में प्रवेश कर सका। मलिक काफूर ने देवगिरि, होयसल राज्य एवं पांड्य राज्य पर आक्रमण किये। अमीर खुसरों के अनुसार काफूर रामेश्वरम् तक पहुँचा। अलाउद्दीन के समय में राजस्व का ढांचा पुनः निर्मित किया गया। विद्रोहों पर नियंत्रण के लिये उसने चार आदेश जारी किए –अमीर वर्ग की सम्पत्ति जब्त करना एवं खालसा भूमि को कृषि योग्य बनाकर राजस्व में वृद्धि करना, दिल्ली में मद्य निषेध, गुप्तचर प्रणाली का गठन, अमीरों के परस्पर मेल–मिलाप रोक लगाना। उसने खलीफा की सत्ता को मान्यता देते हुए स्वयं ने 'यरिमन–उल –खिलाफत–नासिरी–अमीर–उल–मुमिनिन' की उपाधि धारण की। 'खजाइनुल फुतूह' में अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन को 'विश्व का सुल्तान' और 'जनता का चरवाहा' जैसी पदवियों से विभूषित किया है। सुल्तान ने पुलिस, गुप्तचर, डाक पद्धति एवं प्रान्तीय प्रशासन में कई सुधार किये। सबसे महत्वपूर्ण सुधार बाजार नियंत्रण था। दीवान–ए–रियासत (व्यापार का नियंत्रक), शाहना या दण्डाधिकारी (बाजार का दरोगा), मुहतसिब (जनसाधारण का रक्षक एवं नाप–तौल का निरीक्षण कर्ता), बरीद–ए–मुमालिक (गुप्तचर अधिकारी) आदि नये पद सृजित कर प्रशासन को ठीक किया।

उसने अपनी एक विशाल सेना के रख–रखाव हेतु आर्थिक सुधार किए। मोलभाव सुनिश्चित करके सुल्तान ने कालाबाजारी और मुनाफाखोरी पर रोक लगा दी। सराए–ए–अदल स्थानीय एवं विदेशी वस्तुओं का बाजार था, अलाउद्दीन पहला शासक था जिसने सैनिकों को नकद वेतन दिया।

1303 ई. में अलाउद्दीन ने अलाई किला अथवा कोश ए सीरी (कुश्के सीरी) बनवाया, जिसमें सात द्वार थे। 1316 ई. में अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कुबुबुद्दीन मुबारक खिलजी शासक बना। उसने अपने पिता के सभी कठोर आदेशों को रद्द कर दिया और स्वयं को खलीफा घोषित कर 'उल–वासिक–बिल्लाह' की उपाधि धारण की। इसकी हत्या के बाद नासिरूद्दीन खुसरव शाह सुल्तान बना जो खिलजी वंश का अंतिम शासक था।

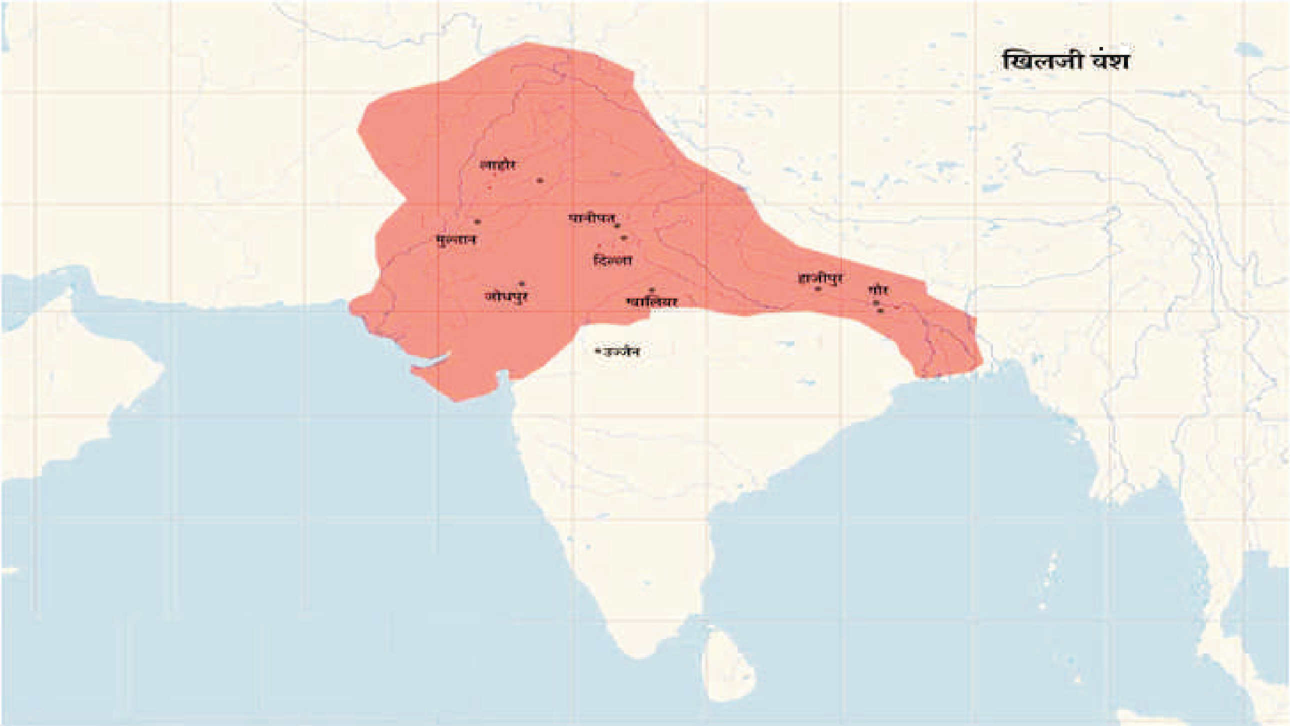

चित्र 2.2 : खिलजी साम्राज्य

तुगलक शासनकाल

तुगलक वंश : खुसरव शाह की हत्या करके गाजी मलिक अथवा तुगलक गाजी गयासुद्दीन तुगलक 1320 ई. में दिल्ली का सुल्तान बना। सुल्तान बनते ही उसे प्रान्तीय विद्रोहों का सामना करना पड़ा। तेलंगाना के राजा प्रताप रुद्रदेव के खिलाफ उसने अपने पुत्र जूना खां को वारंगल भेजा। जाजनगर (उड़ीसा) में सैन्य अभियान किया गया जिसमें उलूग खां (जूना खां) की विजय हुई। गयासुद्दीन का अंतिम सैनिक अभियान बंगाल के विद्रोह का दमन था। दिल्ली वापसी पर आयोजित स्वागत समारोह में एक लकड़ी के भवन से गिरने से 1325 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् इसका पुत्र जूना खां मुहम्मद तुगलक के नाम से सुल्तान बना। उसका नाम कई संज्ञाओं से जोड़ा गया – ''अंतर्विरोधों का विस्मयकारी मिश्रण'', रक्त का प्यासा आदि। मुहम्मद तुगलक के समय तुगलक साम्राज्य 23 मुक्तों (प्रान्तों) में बँटा हुआ था। बरनी सुल्तान की पाँच मुख्य योजनाओं का वर्णन करता है – दोआब में कर वृद्धि, देवगिरि को राजधानी बनाना, सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन, खुरासान पर आक्रमण, कराचिल की ओर अभियान।

सुल्तान ने 1327 से 1335 ई. तक देवगिरि को अपनी राजधानी बनाकर रखा और उसका नाम दौलताबाद रखा। 1330 ई. में तांबे एवं कांसे के मिश्रित सांकेतिक सिक्के चलाए। लोगों ने जाली सिक्के बनाना आरम्भ कर दिया। अतः सांकेतिक मुद्रा बंद करनी पड़ी। मोरक्को का यात्री इब्नबतूता लगभग 1333 ई. में भारत आया, सुल्तान ने उसे दिल्ली का काजी नियुक्त किया तथा 1342 ई. में राजदूत बनाकर चीन भेजा। 1351 ई. में मुहमद तुगलक की मृत्यु हो गई।

1351 ई. में फिरोजशाह तुगलक सुल्तान बना जो मुहम्मद तुगलक का चचेरा भाई था। बंगाल के हाजी इलियास के स्वतंत्र हो जाने से उसके विरूद्ध फिरोजशाह ने दो बार सैन्य अभियान किया परन्तु असफल रहा। फिरोजशाह ने सरकारी एवं सेना की नौकरी को वंशानुगत बना दिया एवं योग्यता की जाँच करने की प्रणाली का त्याग कर दिया। उसने अपने पुत्र फतह खां को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सिक्कों पर अपने नाम के साथ उसका नाम भी अंकित करवाया। फिरोज ने भवन निर्माण कला को अत्यधिक महत्व दिया। हिसार फिरोजा, फिरोजाबाद एवं जौनपुर आदि नगर बसाए । टोपरा तथा मेरठ से अशोक स्तम्भ दिल्ली लाए गए परन्तु विद्वान इन्हें पढ़ ना सके। फिरोज की सबसे बड़ी उपलब्धि थी हाँसी तथा सिरसा के क्षेत्रों में पानी की कमी दूर करने के लिए नहरों की खुदाई। एक नहर सतलज नदी से दीपालपुर के तथा दूसरी यमुना नदी से सिरमूर के पास खुदवाई गयी। उपज वृद्धि करने तथा अकाल से निपटने हेतु ठोस नीति अनपाई गयी। फिरोज तुगलक भी कट्टरवादी इस्लामिक अमीरों के हाथों में रहा। उसने न केवल बाह्मणों पर जजिया नामक कर लगाया बल्कि मुस्लिम विचारधारा शिया समर्थक व्यक्तियों को मृत्युदण्ड भी दिया। गैर इस्लामी सजाएँ समाप्त कर दी गयी। गैर शरीयत कर (24) हटा दिये गए, केवल चार मुख्य कर रखे खराज, जकात, खम्स तथा जजिया रखे गए। दासों की संख्या में असाधारण वृद्धि (1,80,000) हुई और दीवान–ए–बंदगान के नाम से दासों के नाम से नया विभाग भी खोला गया। फिरोज ने दिल्ली में खरबूजों तथा अंगूरों की खेती को प्रोत्साहित किया और अनेक बाग लगवाये। 1388 ई. में फिरोजशाह की मृत्यु हुई। तुगलक वंश का अंतिम शासक नासिरूद्दीन महमूद था। इसी समय 1398 ई. में तुर्क आक्रांता तैमूर लंग ने भारत पर आक्रमण कर लूटपाट की थी।

सैयद वंश :

तैमूर ने दिल्ली को जीतकर खिज्र खां को अपना

प्रतिनिधि नियुक्त किया। खिज्र खां ने ही सैयद वंश की स्थापना की। 1414 से 1421 ई. तक शासन करने के बाद भी खिज्र खां ने न तो कभी शाह की उपाधि धारण की और न ही अपने नाम के सिक्के चलाए। इसके बाद मुबारक शाह 1421 से 1434 ई. तक शासक रहा। इसने सर्व शाह की उपाधि धारण की।

लोदी वंश :

अन्तिम सैयद शासक आलमशाह ने स्वेच्छापूर्वक दिल्ली का शासन त्याग दिया और बहलोल लोदी ने 1451 ई. में दिल्ली पर अधिकार कर लिया। दिल्ली पर तुर्कों के बाद पहली बार अफगान साम्राज्य का शासन हुआ। उसने जौनपुर के महमूद शाह शर्की के दिल्ली पर अधिकार करने के प्रयास को असफल कर दिया। 38 वर्ष शासन करने के बाद 1489 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद इसका दूसरा पुत्र निजामशाह सिकन्दरशाह की उपाधि धारण कर सुल्तान बना। तिरहुत, बिहार एवं बंगाल तक उसने साम्राज्य विस्तार किया। इसका न्याय प्रबंध एवं राजस्व सुधार प्रसिद्ध है। भूमि की नाप और उसके आधार पर भूमिकर नियत करने का कार्य किया। एक गज चलाया जो प्रायः 30 इंच का होता था। यह गज लम्बे समय तक सिकन्दरीगज के नाम से चलता रहा। इटावा, बयाना, कोल, ग्वालियर एवं धौलपुर के शासकों को अधीन रखने के अभिप्राय से उसने 1506 ई. में आगरा नगर का निर्माण करवाया। उसका उपनाम 'गुलरु खाँ' था। इसी उपनाम से कविता भी लिखता था। नवबर 1517 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र इब्राहिम लोदी आगरा में गद्दी पर बैठा। 1517–1518 ई. में इब्राहिम लोदी व राणा सांगा के मध्य युद्ध हुआ, जिसमें लोदियों की हार हुई। 1526 ई. में पानीपत के मैदान में सिकन्दर बाबर से युद्ध में हार गया। इतिहास में यह युद्ध पानीपत के प्रथम युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यह युद्ध युगान्तकारी सिद्ध हुआ और भारत में मुगल वंश की स्थापना हुई।

सल्तनत कालीन प्रशासन :

सुल्तान : सुल्तान की उपाधि तुर्की शासकों द्वारा प्रारंभ की गयी। महमूद गजनवी सुल्तान की उपाधि धारण करने वाला पहला शासक था। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति सुल्तान के हाथ में थी। वह पूर्णतया प्रधान न्यायाधीश, राजनीति एवं मजहब दोनों क्षेत्रों का अधिपति होता था। सुल्तानों से अपेक्षा की जाती थी कि वे उलेमा वर्ग की राय माने।

अमीर : सुल्तान की शक्ति पर अमीर वर्ग का प्रभाव रहा। अमीरों के दो वर्ग तुर्क तथा गैर तुर्क थे। इल्तुतमिश के काल में चालीस अमीरों का समूह चहलगानी कहलाता था। शासन की योग्यता एवं अयोग्यता के अनुसार अमीरों का दरबार में प्रभाव कम–ज्यादा होता रहा।

केन्द्रीय शासन संस्था मजलिस–ए–खलवत मंत्री परिषद् की तरह होती थी। वजीर, आरिजे मुमालिक, दीवाने इंशा, दीवाने रिसालत इसके चार स्तंभ थे।

वजीर का कार्यालय दीवाने–ए–विजारत कहलाता था। इसे वित्त विभाग कहा जा सकता है। मुस्तौफी (महालेखा परीक्षक), खजीन (खजांची), मजमआदार (हिसाब संग्रहकर्ता) इस विभाग के

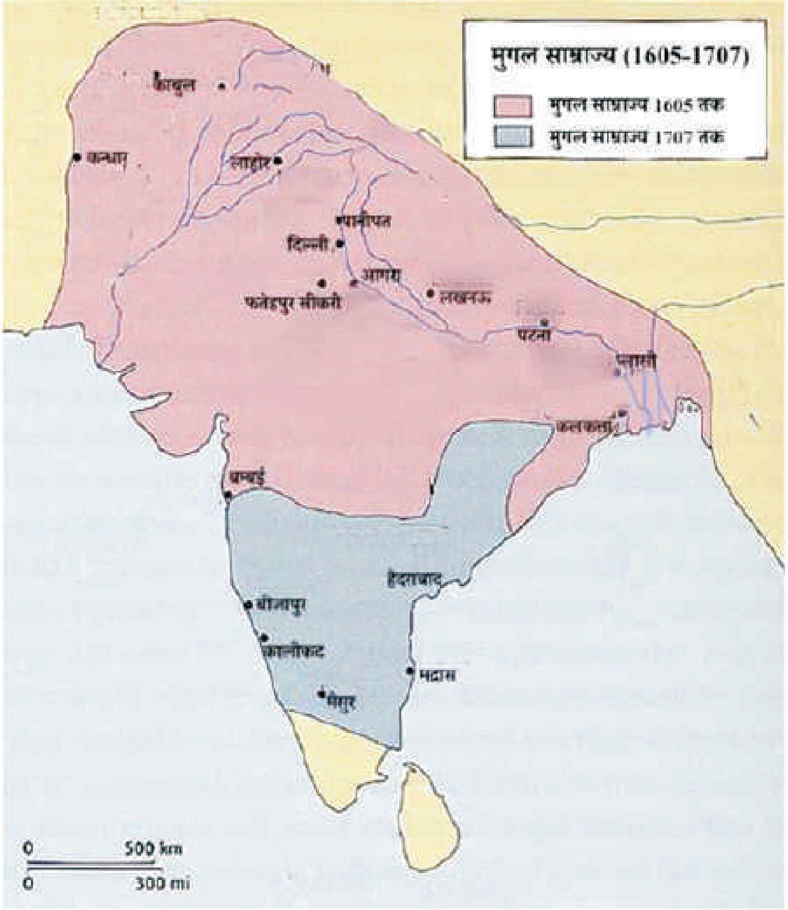

चित्र 2.3 : मुगल साम्राज्य

कर्मचारी होते थे।

जलालुद्दीन खिलजी ने दीवाने वकूफ एवं अलाउद्दीन ने दीवान–ए–मुस्तखराज विभाग की स्थापना की थी। ये वित्त विभाग के अंतर्गत ही आते थे। मुहम्मद तुगलक ने भूमि को कृषि योग्य बनाने हेतु दीवाने–अमीर–कोही की स्थापना की।

दीवाने इंशा पर शाही पत्र व्यवहार का दायित्व था। दीवाने–रियासत का कार्य विदेश मंत्री की तरह था। सद्र–उस सुदूर धर्म विभाग का प्रमुख होता था। इसका कोष अलग होता था। जिसमें जकात से प्राप्त धन एकत्रित होता था। काजी उल–कुजात (न्याय), बरीद–ए–मुमालिक (सूचना) के विभाग थे। दरबार एवं राजमहल के लिए छः कर्मचारी होते थे – वकीर–ए–दर, बारबक, अमीर–ए–हाजिब, अमीर– ए–शिकार, अमीर मजलिस, सर–ए–जहाँदार। सल्तनत काल सैन्य धर्म सापेक्ष राजतंत्र कहा जा सकता है। युद्ध के समय लूट के सामान को 'खम्स' कहा जाता था। प्रान्तीय शासन केन्द्रीय शासन का प्रतिरूप था। प्रांतपतियों को वली या नाजिम कहा जाता था। प्रांतपति की नियुक्ति सुल्तान द्वारा होती थी। शिक जिले का राजस्व अधिकारी होता था।

अन्ततः 1206 से 1526 ई. तक दिल्ली की सल्तनतकाल में साम्राज्य सीमा तत्कालीन सुल्तान की सैनिक शक्ति के अनुसार घटती–बढ़ती रही।

(ii) मुगलकालीन भारत (1526 से 1858 ई. तक)

बाबर 1526 ई. में पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त कर भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक बना। यह तुर्क मुसलमान था और तैमूर का वंशज था। चुगताई तुर्क वंश से सम्बन्धित होने के साथ–साथ मंगोल सेना नायक चंगेज खां के वंश से भी इसका ताल्लुक था। इसकी माँ चंगेज खां की वंशज थी। जहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर प्रारंभ में पिता की मृत्यु के बाद फरगना की गद्दी पर 'बादशाह' की उपाधि के साथ बैठा। बादशाह की उपाधि धारण करने वाला यह पहला तैमूर वंशीय शासक था। आगरा से 40 कि.मी. दूर खानवा में बाबर एवं राणा सांगा का युद्ध मार्च 1527 ई. में हुआ। बाबर ने यह युद्ध 'तुलगुमा' पद्धति से लड़ा एवं जेहाद का नारा दिया। विजयी होने के बाद बाबर ने गाजी की उपाधि धारण की। 1528 ई. में बाबर ने चंदेरी के मेदिनीराय को परास्त किया। 1529 ई. में घाघरा के युद्ध में बाबर ने अफगानों को परास्त किया। बाबर की मृत्यु 26 दिसम्बर 1530 ई. को हुई। इसे यमुना के किनारे आगरा में रामबाग में दफनाया गया बाद में बाबर की इच्छा के अनुसार उसे काबुल में दफनाया गया। बाबर ने अपनी दिनचर्या की पुस्तक तुर्की भाषा में लिखी थी, जिसका नाम बाबरनामा या तुजुके बाबरी है। अब्दुर्रहीम खानखाना ने इसे बाद में फारसी में अनूदित किया।

हुमायूँ –

बाबर के बाद उसका पुत्र नासिरूद्दीन हुमायूँ शासक बना। हुमायूँ ने अपने भाई कामरान को काबुल और कंधार, असकरी को संभल, हिंदाल को अलवर व मेवात एवं अपने चचेरे भाई सुलेमान को बदख्वाँ प्रदेश दिया। हुमायूँ ने ''दीन पनाह'' नामक नये शहर की स्थापना की थी। उसने मालवा व गुजरात पर आक्रमण किया। हुमायूँ एवं अफगान शासक शेर खाँ के मध्य बक्सर के निकट चौसा नामक स्थान पर 1539 ई. में युद्ध हुआ, जिसमें मुगलों की पराजय हुई। चौसा की जीत के बाद शेर खाँ ने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की, और अपने नाम के सिक्के चलाए। शेरशाह का वास्तविक नाम फरीद खाँ था। 1540 ई. में कन्नौज या बिलग्राम का युद्ध शेरशाह एवं हुमायूँ के मध्य हुआ। हुमायूँ हार कर भाग गया। दिल्ली की सल्तनत शेरशाह के अधिकार में चली गई। निर्वासित जीवन में ही उसने भटकल के पास शेख अली अख्तर की लड़की हमीदा से शादी की जो आगे चलकर अकबर की माँ बनी। धीरे–धीरे हुमायूँ ने कन्धार व काबुल को जीता। हिन्दुस्तान को पुनः जीतने के प्रयास में 1555 ई. में उसने लाहौर पर कब्जा कर लिया। उसने नसीब खाँ एवं तातार खाँ के नेतृत्व वाली अफगान सेना को मच्छीवारा के युद्ध में हराकर पंजाब पर अधिकार किया। जून 1555 ई. में सरहिन्द के निकट उसने अफगानों को फिर परास्त किया। अफगानों का नेतृत्व सिकन्दर सूर और मुगलों का नेतृत्व बैरम खां ने किया। इसके बाद 23 जुलाई 1555 ई. को हुमायूँ दूसरी बार दिल्ली की गद्दी पर बैठा, लेकिन कुछ समय बाद ही 24 जनवरी 1556 ई. वह को दीनपनाह में स्थित पुस्तकालय की सीढ़ियों से फिसल गया और गहरी चोट के कारण मर गया। हुमायूँ अफीम के नशे में चूर रहता था। वह ज्योतिष में आस्था रखता था, इसलिए उसने सप्ताह में सातों दिन सात रंग के कपड़े पहनने का नियम बनाया था।

सूर साम्राज्य :–

सूर साम्राज्य का संस्थापक फरीद (शेरा खाँ) हसन खाँ का पुत्र था जो जौनपुर राज्य के अन्तर्गत सासाराम (बिहार) का जमींदार था। दक्षिणी बिहार के तत्कालीन शासक बहार खाँ ने निहत्थे फरीद द्वारा शेर मार दिये जाने पर उसे शेर खाँ की उपाधि प्रदान की। उसका साम्राज्य पश्चिम कन्नौज से लेकर पूर्व में असम की पहाड़ियों तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ था। मालवा भी शेरशाह ने जीत लिया था। 1544 ई. में मालदेव को हराकर शेरशाह ने अजमेर, जोधपुर एवं मेवाड़ पर अधिकार कर लिया था। शेरशाह ने मालदेव से युद्ध बड़ी मुश्किल से जीता था। जबकि जैता कूँपा ने वीरता पूर्वक संघर्ष किया तभी शेरशाह ने कहा था ''मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की सल्तनत खो देता।'' मेवाड़ पर भी उसका सांकेतिक अधिकार ही हो पाया था। 1544 ई. में कालिंजर के युद्ध के दौरान बारूद में विस्फोट होने से को शेरशाह की मृत्यु हो गयी। शेरशाह के बाद इस्लामशाह ने 1553 ई. तक शासन किया लेकिन बाद में अयोग्य उत्तराधिकारियों के आपसी संघर्ष से सूर साम्राज्य का पतन हुआ। शेरशाह के सुधार एवं निर्माण प्रसिद्ध हैं। उसने भूमि माप एवं लगान को व्यवस्थित कर गल्लाबख्शी या बंटाई, नश्क, मुक्ताई या कनकूत और नकदी या जब्ती प्रणाली प्रचलित की। 4 बड़ी सड़कें एवं अनेक सरायों का निर्माण करवाया। उसकी सबसे लम्बी सड़क बंगाल के सोनार गांव से लेकर पेशावर तक थी, जिसका अस्तित्व आज भी है। यह सड़क ग्रांड ट्रंक रोड के नाम से विख्यात है। मुद्रा ढलाई में सुधार करते हुए उसने तांबे का 380 ग्रेन का दाम तथा चांदी का 178 ग्रेन दाम का रुपया जारी किया। सासाराम (बिहार) में एक झील के मध्य अपने मकबरे का निर्माण करवाया। यह मकबरा डमरु की आकृति वाला दिखाई पड़ता है, जिस पर हिन्दू मंदिरों का प्रभाव है।

चित्र 2.3 : शेरशाह सूरी कालीन सिक्के

अकबर (1556–1605 ई.):– अकबर का जन्म अमरकोट (पाकिस्तान) के किले में 1542 ई. में हुआ। 13 वर्ष की आयु में 14 फरवरी, 1556 ई. को 'कलानौर' में ईंटों का सिंहासन बनाकर बैरम खाँ ने उसका राज्याभिषेक किया। बैरम खाँ को उसका संरक्षक बनाया गया। अफगान सेनापति हेमू एवं मुगल प्रतिनिधि बैरम खाँ के मध्य पानीपत की दूसरी लड़ाई 5 नवम्बर 1556 ई. को हुई। गर्दन में तीर लग जाने से हेमू बेहोश हो गया और अफगानों की हार हुई। हेमू बिहार के अफगान मुहम्मद आदिलशाह का सुयोग्य हिन्दू सेनापति था। वह 22 युद्धों में विजय प्राप्त कर चुका था व उसने राजा विक्रमजीत की उपाधि धारण की थी।

अकबर ने 1516 ई. में संगीत प्रेमी बाज बहादुर से मालवा, चुनार का किला, गोड़वाना का किला जीता। उसने सुर्जन हाड़ा से रणथम्भौर का किला भी जीत लिया। राजा रामचन्द्र ने कालिंजर का किला अकबर को सौंप दिया। 1570 ई. में मारवाड़ एवं बीकानेर दोनों ने अपने किले अकबर को दे दिये तथा मुजफ्फरशाह से गुजरात एवं दाउद खाँ से बंगाल का क्षेत्र भी अकबर ने छीन लिया। महाराणा प्रताप (मेवाड़) का मानसिंह तथा आसफ खां के संयुक्त नेतृत्व में मुगल सेना के साथ हल्दीघाटी का विश्व प्रसिद्ध युद्ध 1576 ई. में हुआ, परन्तु मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। प्रताप ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। मुगल सेना के लौटते ही प्रताप ने अपने क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया व सामान्तों को अपनी जागीरें प्रदान की।

काबुल (मिर्जा हकीम), कश्मीर (युसुफ), सिंध (मिर्जा जानीबेग), उड़ीसा (निसार खां), कन्धार (हुसैन मिर्जा), खालेद (अली खां) पर अकबर की मुगल सेना ने निर्णायक जीत प्राप्त की। अकबर ने खानदेश का नाम 'धनदेश' रखा। मुगल सेना ने चाँद बीबी के प्रबल प्रतिरोध का सामना करते हुए 1600 ई. में अहमदनगर पर विजय प्राप्त की। 1601 ई. में असीरगढ़ पर भी मुगल अधिकार हो गया। यह अकबर की अन्तिम विजय थी। 1564 ई. में मालवा के गवर्नर अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में उजबेगों के विद्रोह कर दिया। अकबर ने उजबेगों के दोनों विद्रोहों को कुचल दिया। 1584 ई. में गुजरात के विद्रोहों को कुचलने के कारण अब्दुर्रहीम को 'खानखाना' की उपाधि दी गयी। युसुफजाहियों के हमले के समय राजा बीरबल (एक नवरत्न) की मृत्यु हो गई थी। अकबर स्वयं 1605 ई. में एक लम्बी बीमारी के बाद चल बसा। उसे सिकन्दरा के मकबरे में दफनाया गया। उसने मकबरे पर बौद्ध निर्माण कला का प्रभाव है।

अकबर ने गोवा से पुर्तगाली मिशनरियों को बुलवाया। उसने धर्मशास्त्रीय चर्चा करने के लिए फतेहपुर सीकरी में 1575 ई. में इबादतखाना बनवाया। 1581 ई. में उसने दीन–ए–इलाही नामक धर्म का प्रवर्तन किया। इस धर्म में सम्मिलित होने वाला पहला हिन्दू राजा बीरबल था। शेख मुबारिक ने अकबर को 'इनाम आदिल' (मुजतहिंद) घोषित किया। सूफी मत के चिश्ती संप्रदाय को संरक्षण दिया, लाहौर एवं आगरा में ईसाइयों को गिरजाघर बनवाया। उसने जैन मुनि हरिविजय सूरि को जगदगुरु की उपाधि से संरक्षण प्रदान किया। दीन–ए–इलाही धर्म का प्रधान पुरोहित अबुल फजल था। 1583 ई. में अकबर ने इलाही संवत् के नाम से एक नया कैलेण्डर जारी किया था।

राजपूतों के प्रति अपनाई गई नीति में अकबर ने वैवाहिक सम्बन्ध बनाना एवं शक्ति प्रदर्शन की युक्ति से राजपूतों की शक्ति को अपने अधीन करने का कार्य किया। अकबर के साथ सन्धि करने वालो में पहला राजपूत राजा कछवाहा भारमल था। उसने भगवान दास एवं राजा मानसिंह को दरबार में उच्च पदों पर नियुक्त किया डूँगरपुर, बाँसवाड़ा एवं प्रतापगढ़ के राजवंशों ने मुगल अधीनता स्वीकार कर ली, परन्तु वे पृथक ही बने रहे। 1564 ई. में अकबर ने जजिया कर समाप्त कर दिया।

फतेहपुर सीकरी 1569 से लेकर 1584 ई. तक शाही राजधानी रही। वहाँ का बुलन्द दरवाजा, जो मस्ज़िद के दक्षिणी द्वार पर है, वह अकबर के गुजरात विजय के स्मारक स्वरूप बनाया गया।

जहाँगीर (1605–1627 ई.):

शेख सलीम चिश्ती के नाम पर इसका नाम 'सलीम' रखा गया था। सैन्य सेवाओं के कारण सलीम को 12 हजारी मनसब प्राप्त था। 1599 ई. में सलीम ने अकबर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था। अकबर द्वारा दमन के लिए भेजे गये अबुल फ़जल का 1602 ई. में उसने वध करवा दिया। 1605 ई. में आगरा के किले में सलीम ने नरूद्दीन मुहम्मद जहांगीर बादशाह की उपाधि धारण कर मुगल सत्ता संभाली।

उसने सिक्ख गुरु अर्जुनदेव को मृत्यु दण्ड दिया था। जहांगीर की कन्धार विजय सैनिक तथा व्यापारिक दृष्टि से

महत्वपूर्ण मानी जाती है। 1611 ई. में जहांगीर ने मेहरूनिस्सा नामक विधवा से विवाह करके उसे 'नूरमहल' नूरजहाँ की उपाधि दी। बाद में उसे बादशाह बेगम बनाया गया। ब्रिटिश दूत कैप्टन हॉकिन्स तथा सर टामस रो उसके दरबार में आए थे। 1627 ई. में जहांगीर की मृत्यु हुई।

शाहजहाँ (1627–1658 ई.) –

इसका बचपन का नाम खुर्रम था। 1612 ई. में इसका विवाह आसफ खां की पुत्री अरजुमन्द बानो बेगम (मुमताज महल) के साथ हुआ। फरवरी 1628 ई. में आगरा में इसका राज्यारोहण हुआ। इसके काल में खानजहाँ लोदी, जुझार सिंह (बुंदेलों) का विद्रोह हुआ। शाहजहाँ ने 1632 ई. में पुर्तगालियों को हुगली में

Silver coins of Akbar

चित्र 2.5 : अकबर कालीन सिक्के

चित्र 2.6 : फतेहपुर सीकरी

पराजित किया। उसने अहमदनगर का विलय मुगल साम्राज्य में कराया। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह को परास्त किया। 1652 ई. में शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगजेब को दक्खन का वायसराय बनाया। 1657 ई. में औरंगजेब ने शाहजहाँ को आगरा के किले में कैद कर दिया। अपने भाइयों दारा, मुराद एवं शुजा को मारकर वह स्वयं गद्दी पर बैठ गया। 1666 ई. में शाहजहाँ की मृत्यु हुई। उत्तराधिकार हेतु धरमट का युद्ध दारा शिकोह एवं औरंगजेब के मध्य हुआ था। फ्रेंच यात्री बर्नियर टेवनियर एवं इटालियन यात्री मनूची ने शाहजहाँ के शासन काल का वर्णन किया है।

औरंगजेब (1658–1707 ई.) औरंगजेब ने शासक बनने के बाद असम, कूच बिहार, रंगपुर, कामरूप, मारवाड़ के राठौरों को पराजित किया। इसने राजा जयसिंह को दक्खन का गवर्नर नियुक्त किया। ''पुरन्दर की सन्धि'' जून 1665 ई. में शिवाजी एवं राजा जयसिंह के मध्य हुई। शिवाजी ने अपने 23 किले राजा जयसिंह को दिये। 1660 में शिवाजी राजा जयसिंह के प्रयासों से औरंगजेब के दरबार में पहुँचे मगर औरंगजेब द्वारा उनके साथ गरिमा युक्त व्यवहार नहीं किया गया अपितु षड़यत्र पूर्वक बंदी बना लिया गया। शिवाजी अपने सहयोगियों की चतुराई पूर्वक योजना से गुपत रूप से किले से निकल कर महाराष्ट्र चले गये। 1686 ई. में औरंगजेब ने स्वयं जाकर बीजापुर पर कब्जा किया एवं 1678 ई. में गोलकुण्डा पर भी अधिकार किया। उसके काल मे हिन्दू व्यापारियों पर 5 प्रतिशत कर बढ़ाया गया। 1669 ई. में मन्दिरों को ध्वस्त करने का आदेश औरंगजेब ने दिया। 1679 ई. में हिन्दुओं पर पुनः जजिया लगाया गया। औरंगजेब ने भी मजहब को एक औजार के रूप में प्रयोग किया। उसने अकबर के काल से चली आ रही प्रथा झरोखा दर्शन एवं संगीत पर रोक लगा दी। 1707 ई. में अहमदनगर में इसकी मृत्यु हो गयी। इसके शासनकाल में 1668 ई. में गोकुल के नेतृत्व में जाटों व 1672 ई. में सतनामियों ने विद्रोह

किया। सिक्खों के गुरु तेगबहादुर ने भी औंरगजेब के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज़ उठायी। इस कारण उन्हें मार दिया गया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल वंश को कमजोर एवं अयोग्य उत्तराधिकारी मिले जिससे मुगल साम्राज्य का क्रमशः पतन होना प्रारम्भ हो गया। सन् 1707 ई. में बहादुरशाह मुगल तख्त पर बैठा। सूरत की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी सन् 1711 में बहादुरशाह के दरबार में अपना शिष्ट मण्डल भेजा उस पर डोना जुलियाना डायस डा कोस्टा नामक एक ईसाई महिला का प्रभाव देखने को मिलता है; जिसे खातुम, बीबी, फिदवी दुआगो जुलियाना की उपाधियाँ मिली हुई थी। उसने पुर्तगालियों के हितों की बड़ी रक्षा की।

1712 ई. से लेकर 1757 ई. तक मुगल दरबार एवं तख्त षड़यंत्र एवं हत्या का केन्द्र बनकर रह गया। तत्कालीन राजनीतिक शक्ति के रूप में उसका स्थान गौण हो गया था।

मुगलकालीन प्रशासन :–

मुगल शासन प्रणाली भारतीय तथा विदेशी प्रणालियों का मिला–जुला रूप थी। बादशाह शासन का अधिपति, सर्वेसर्वा वकील–ए–मुतलक (वजीर) बादशाह के बाद सबसे बड़ा अधिकारी था। प्रधान सद्र मीरे समा नाम के दीवान वित्त विभाग का प्रमुख था।

प्रांतीय शासन सूबों में विभक्त था, जो अकबर के समय 15 थे और औरंगजेब के समय बढ़कर 21 हो गये थे। इनमें सूबेदार, दीवान, सदर काजी, प्रांतीय बख्शी, कोतवाल आदि अधिकारी होते थे। जिले का शासन फौजदार, अमलगुजार (मालगुजारी का अधिकारी), बितिकची (सहायक), शिकदार (परगना प्रमुख), आमिल (मुन्सिफ), फोतदार (खजांची) एवं कानूनगो (पटवारियों का अधिकारी) के हाथों में था।

बादशाह प्रधान सेनापति होता था। सेना मनसबदारी प्रथा पर आधारित थी। मनसबदारी जात और सवार में विभक्त थी।

(iii) सत्ता के साथ प्रतिरोध एवं सहयोग राजस्थान के संदर्भ में:– राव शेखा, हम्मीर चौहान, महाराणा प्रताप, चंद्रसेन, बीकानेर का रायसिंह, सवाई जयसिंह एवं अमरसिंह राठौड़।

चित्र 2.7 : राव शेखा

राव शेखा : महाराव शेखा का जन्म 24 सितम्बर 1433 ई. को हुआ था। इनके पिता मोकल एवं माता का नाम निर्वाण था। राव मोकल आमेर (जयपुर) राज्य के अन्तर्गत आने वाले नान के शासक थे। 1445 ई. में बारह वर्ष की उम्र में शेखा ने अपने पिता का उत्तरदायित्व संभाला। आमेर (जयपुर) के शासक उदयकरण ने शेखा को महाराव की उपाधि प्रदान की थी। 16 वर्ष की उम्र में मुल्तान, सेवार, नगरचल के सांखला राजपूत पर अचानक आक्रमण कर विजय प्राप्त करना शेखा का पहला सफल अभियान था। 1473 ई. से 1477 ई. में राव शेखा ने पन्नी पठानों की सहायता से नोपसिंह जाटू से दादरी और अन्य जाटू राजपूतों से भिवानी पर विजय प्राप्त की। उसने इस्तरखान से हांसी, हेदाखान कायमखानी से हिसार को जीतकर अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया। 1449 ई. में आमेरसर को अपने राज्य की राजधानी बनाया। आमेरसर में शेखा ने भगवान जगदीश का मन्दिर तथा 1477 ई. में शिकारगढ़ का किला बनवाया।

1488 ई. में रालावता नामक स्थान पर इनकी मृत्यु हुई जहाँ उसकी की छतरी बनी हुई है। महाराव शेखा ने अपने जीवनकाल में 52 युद्ध लड़े। उसे जयपुर के कछवाहा वंश के उपवर्ग 'शेखावत' का संस्थापक माना जाता है। उसकी पत्नी गंगा कुमारी ने आमेरसर किले के मुहानें पर कल्याणजी का मन्दिर बनवाया।

चित्र 2.8 : हम्मीर देव चौहान

हम्मीर देव चौहान (1282–1301 ई.)

बागभट्ट के बाद उसका पुत्र जैत्रसिंह (जयसिम्हा) रणथम्भौर का शासक बना। जैत्रसिंह ने अपने जीवन काल में ही अपने छोटे पुत्र हम्मीर देव को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर 1282 ई. में उसका राज्यारोहण किया।

हम्मीर देव के सिंहासन पर बैठते ही दिग्विजय की नीति अपनाते हुए उसने भीमरस के राजा अर्जुन को पराजित करके माण्डलगढ़ से कर वसूल किया। दक्षिण के परमार शासक भोज को पराजित करके उत्तर की ओर चित्तौड़, आबू, वर्धनपुर (काठियावाड़), पुष्कर, चंपा होता हुआ वापस रणथम्भौर पहुँचा। रणथम्भौर पहुँचकर विजय के उपलक्ष्य में उसने 'कोटियजन' यज्ञ

का आयोजन करवाया। हम्मीर ने 17 युद्ध लड़े जिनमें से 16 युद्धों में विजयी रहा।

दिल्ली के जलालुद्दीन खिलजी ने हम्मीर देव की बढ़ती हुई शक्ति को देखा तो रणथम्भौर की ओर रवाना हुआ।

जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने झाईन से रणथम्भौर की ओर बढ़कर दुर्ग की घेराबंदी कर दी। काफी दिनों के प्रयास के बाद सुल्तान को सफलता नहीं मिली तो घेरा उठाने का निर्णय लिया। जलालुद्दीन खिलजी हम्मीर देव की मजबूत मोर्चाबंदी को नष्ट करने में असफल रहा। अतः जून, 1291 ई. में सुल्तान रणथम्भौर दुर्ग का घेरा उठाकर दिल्ली की तरफ कूच कर गया।

1296 ई. में जलालुद्दीन का भतीजा व दामाद अलाउद्दीन खिलजी उसकी हत्या कर दिल्ली का सुल्तान बन गया। अलाउद्दीन खिलजी चौहानों की शक्ति को सहन नहीं कर सका और रणथम्भौर जीतने की योजना बनाने लगा। उसी समय उसे दुर्ग पर आक्रमण करने का बहाना भी मिल गया। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार यह बहाना हम्मीर द्वारा अलाउद्दीन के बागी मंगोल मुहम्मद शाह को शरण देना था। मंगोल सेनापति मुहम्मद शाह व केहब्रू ने लूट का माल लेकर अलाउद्दीन की सेना से बगावत करके हम्मीर के पास शरण ली। हम्मीर ने अपनी शरण में आए हुए व्यक्तियों को देने से साफ इंकार कर दिया। अलाउद्दीन ने क्रोधित होकर रणथम्भौर पर आक्रमण करने के आदेश दे दिए।

अलाउद्दीन खिलजी ने 1299 ई. के अंत में उलूग खाँ और नुसरत खाँ के नेतृत्व में शाही सेना को रणथम्भौर दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए भेजा। शाही सेना ने 'रणथम्भौर के मार्ग की कुँजी' कहलाने वाले झाईन पर आक्रमण किया। हम्मीर देव उस समय कोटियजन यज्ञ को समाप्त कर मौनव्रत धारण किये हुए था। हम्मीर ने अपने दो सैनिक अधिकारियों 'भीमसिंह और धर्मसिंह' को शत्रु का मुकाबला करने के लिए भेजा। दोनों ने अलाउद्दीन की सेना को बुरी तरह पराजित किया। भीमसिंह और धर्मसिंह लूट का माल लेकर वापस रणथम्भौर की ओर लौट पड़े। भीमसिंह और धर्मसिंह रणथम्भौर के दुर्ग के निकट पहुँचे तो उन्हें सूचना मिली की शत्रु की सेना पुनः आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ रही है। भीमसिंह ने धर्मसिंह को रणथम्भौर भेजकर स्वयं वापस शत्रुओं का मुकाबला करने के लिए रवाना हुआ। इस बार उलूग खाँ ने राजपूतों की सेना को परास्त किया। जिसमें भीमसिंह लड़ते हुए मारा गया। उलूग खाँ रणथम्भौर की ओर नहीं बढ़कर वापस दिल्ली लौट गया।

इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी ने एक बड़ी सेना के साथ उलूग खाँ और नुसरत खाँ को पुनः रणथम्भौर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। सेना ने रणथम्भौर दुर्ग की घेराबंदी कर उसकी प्राचीरों को तोड़ना शुरू किया तभी दुर्ग में से आये हुए एक गोले से नुसरत खाँ की मृत्यु हो गई। इसका पता तुर्की सेना को चला तो तुर्की सेना वहाँ से भागने लगी। यह देखकर उलूग खाँ ने अपने भाई अलाउद्दीन खिलजी के पास नुसरत खाँ की मृत्यु तथा सेना की वापसी का समाचार भेजकर और अधिक सेना भिजवाने का अनुरोध किया। अलाउद्दीन स्थिति की गंभीरता को देखते हुए एक विशाल सेना के साथ दिल्ली से रणथम्भौर की और स्वयं ही रवाना हो गया। दुर्ग पर घेरा डाला गया। यह घेरा काफी दिनों तक चला। जब वर्षा ऋतु निकट आने लगी और दिल्ली एवं अवध में भयंकर विद्रोह उत्पन्न होने की सूचनाएं सुल्तान को मिलने लगी तो वह काफी चिंतित हो गया। उसने छल–कपट का सहारा लेकर रणथम्भौर दुर्ग को विजय करने का निश्चय किया। अलाउद्दीन ने हम्मीर को संदेश भिजवाया कि वह उससे संधि करना चाहता है। हम्मीर ने अपने दो सेनापति 'रणमल' और 'रतिपाल' को संधि करने के लिए शाही शिविर में भिजवाया। सुल्तान ने रणमल और रतिपाल को दुर्ग का लालच देते हुए अपनी ओर मिला लिया। इन दोनों सेना नायकों के विश्वासघात के कारण दुर्ग के गुप्तमार्ग का पता तुर्कों को चला। गुप्तमार्ग से तुर्की सेना दुर्ग में पहुँची।

इतिहासकारों के अनुसार मुसलमानों के द्वारा एक वर्ष लंबी घेराबंदी के कारण दुर्ग के भीतर खाद्य सामग्री का भयंकर अभाव हो गया था। ऐसी स्थिति में हम्मीर ने दुर्ग में बंद रहना उचित नहीं समझकर आक्रमण करने का निश्चय किया। आक्रमण करने से पूर्व राजपूत स्त्रियों ने हम्मीर की रानी रंगदेवी व उसकी पुत्री पदमला के नेतृत्व में जल जौहर किया। इसके बाद राजपूत सैनिकों ने केसरिया वस्त्र धारण कर दुर्ग के फाटक खोल दिये। दोनों पक्षों में जमकर युद्ध हुआ जिसमें हम्मीर वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

11 जुलाई 1301 ई. को रणथम्भौर पर अलाउद्दीन खिलजी का शासन स्थापित हो गया। हम्मीर के विश्वासघाती सेना नायकों रणमल और रतिपाल को अलाउद्दीन खिलजी ने यह कहते हुए कि जो अपने स्वधर्मी राजा के प्रति निष्ठावान नहीं रह सके, उनसे भविष्य में स्वामी भक्ति की आशा कैसे की जा सकती है दोनों को मरवा दिया।

रणथम्भौर के युद्ध में अलाउद्दीन खिलजी के साथ अमीर खुसरो नामक विद्वान भी था। हम्मीर हठ के लिए विश्व में प्रसिद्ध हुआ जिसने अपनी शरण में आये व्यक्तियों को नहीं लौटाया, चाहे उसके लिए उसे अपने पूरे परिवार की ही बलि क्यों न देनी पड़ी हो। हम्मीर के बारे में कहा गया है –

''सिंह सवन सत्पुरुश वचन, कदली फलत इक बार।
तिरिया–तेल, हम्मीर–हठ चढ़े न दूजी बार।।''

हम्मीर ने अपने पिता जयसिंह के 32 वर्षों के शासन की याद में रणथम्भौर दुर्ग में 32 खंभों की छतरी बनवाई जिसे 'न्याय की छतरी' भी कहते हैं। हम्मीर देव ने अपनी पुत्री पदमला के नाम पर 'पदमला तालाब' का निर्माण करवाया। हम्मीर के दरबार में 'बीजादित्य' नामक कवि रहता था।

हम्मीर की मृत्यु के साथ ही रणथम्भौर के चौहानों की शाखा समाप्त हो गई।

चित्र 2. : महाराणा प्रताप

महाराणा प्रताप (1572—1597 ई.) — महाराणा प्रताप का जन्म विक्रम संवत् 1597 ज्येष्ठ शुक्ल तृतीय, रविवार (9 मई, 1540 ई.) को कुंभलगढ़ दुर्ग के (कटारगढ़) 'बादल महल' में हुआ। प्रताप महाराणा उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी माता का नाम जैवंता बाई (पाली नरेश अखैराज सोनगरा चौहान की पुत्री थी।) महाराणा प्रताप का बचपन कुंभलगढ़ दुर्ग में ही व्यतीत हुआ। महाराणा प्रताप का विवाह 1557 ई. में अजब दे पँवार के साथ हुआ जिनसे 16 मार्च, 1559 ई. में अमरसिंह का जन्म हुआ।

महाराणा प्रताप 32 वर्ष की उम्र के थे तब उनके पिता उदयसिंह की होली के दिन 28 फरवरी, 1572 ई. को गोगुंदा में मृत्यु हो गई। उदयसिंह का गोगुंदा में ही दाह संस्कार किया गया। यहां स्थित महादेव बावड़ी पर 28 फरवरी, 1572 ई. को मेवाड़ के सामन्तों एवं प्रजा ने प्रतापसिंह का महाराणा के रूप में राजतिलक किया। महाराणा उदयसिंह द्वारा नामित उत्तराधिकारी जगमाल को मेवाड़ के वरिष्ठ सामन्तों ने अपदस्थ कर दिया।

1570 ई. में अकबर का नागौर में दरबार लगा जिसमें मेवाड़ के अलावा अधिकतर राजपूतों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर ने प्रताप को अधीनता स्वीकार करवाने के लिए चार दल भेजे जिनमें—

पहली बार — जलाल खाँ, जिसको नवंबर, 1572 ई. में प्रताप के पास भेजा गया।

दूसरी बार — जून, 1573 ई. में मानसिंह (आमेर का शासक) को प्रताप को समझाने भेजा गया।

तीसरी बार — अक्टूबर, 1573 ई. में आमेर के भगवानदास को भेजा गया।

चौथी बार — दिसंबर, 1573 ई. में टोडरमल को भेजा गया।

ये चारों शिष्टमंडल प्रताप को समझाने में असफल रहे तो अकबर ने प्रताप को युद्ध में बंदी बनाने की योजना बनाई। बंदी बनाने की योजना अजमेर में स्थित किले में बनाई गई जिसमें आज संग्रहालय स्थित है तथा अंग्रेजो के समय का शस्त्रागार होने के कारण इसे मैगजीन भी कहते है। अकबर ने मानसिंह को इस युद्ध का मुख्य सेनापति बनाया तथा मानसिंह का सहयोगी आसफखाँ को नियुक्त किया गया।

मानसिंह 3 अप्रैल, 1576 ई. को शाही सेना लेकर अजमेर से रवाना हुआ उसने पहला पड़ाव मांडलगढ़ में डाला, 2 माह तक वहीं पर रहा उसके बाद वह आगे नाथद्वारा से लगे हुए खमनौर के मोलेला नामक गाँव के पास अपना पड़ाव डाला। उधर इस शाही सेना के आगमन की सूचना महाराणा प्रताप को मिल गई थी।

महाराणा प्रताप ने गोगुंदा और खमनौर की पहाड़ियों के मध्य स्थित हल्दीघाटी नामक तंग घाटी में अपना पड़ाव डाला। इस घाटी में एक बार में एक आदमी ही प्रवेश कर सकता था। इसलिए सैनिकों की कमी होते हुए भी महाराणा प्रताप के लिए मोर्चाबंदी के लिए यह सर्वोत्तम स्थान था जहाँ प्रताप के पहाड़ों से परिचित सैनिक आसानी से छिपकर आक्रमण कर सकते थे। वहीं मुगल सैनिक भटक कर मेवाड़ के सैनिकों से टकराकर या भूखे प्यासे मरकर जीवन गँवा सकते थे। अंत में दोनों सेनाएँ 18 जून, 1576 ई. को प्रातःकाल युद्ध भेरी के साथ आमने—सामने हुई।

राजपूतों ने मुगलों पर पहला वार इतना आक्रामक किया कि मुगल सैनिक चारों ओर जान बचा कर भागे। इस प्रथम चरण के युद्ध में हकीम खाँ सूर का नेतृत्व सफल रहा। मुगल इतिहासकार बँदायूनी, जो कि मुगल सेना के साथ था, वह स्वयं भी उस युद्ध से भाग खड़ा हुआ। मुगलों की आरक्षित फौज के प्रभारी मिहत्तर खाँ ने यह झूठी अफवाह फेला दी की 'बादशाह अकबर स्वयं शाही सेना लेकर आ रहे हैं।' अकबर के सहयोग की बात सुनकर मुगल सेना की हिम्मत बँधी और वो पुनः युद्ध के लिए तत्पर होकर आगे बढ़ी। राजपूत भी पहले मोर्चे में सफल होने के बाद बनास नदी के किनारे वाले मैदान में जिसे 'रक्तताल' कहते हैं, में आ जमें। इस युद्ध में राणा की ओर से पूणा व रामप्रसाद हाथी और मुगलों की ओर से गजमुक्ता व गजराज के मध्य युद्ध हुआ। रामप्रसाद हाथी के महावत के मारे जाने के कारण रामप्रसाद हाथी मुगलों के हाथ लग गया। रामप्रसाद हाथी अकबर के लिये बड़े महत्व का था, जिसका नाम अकबर ने पीर प्रसाद कर दिया था।

महाराणा प्रताप की नज़र मुगल सेना के सेनापति मानसिंह पर पड़ी। स्वामीभक्त घोड़े चेतक ने स्वामी का संकेत समझकर अपने कदम उस ओर बढ़ाये, जिधर मुगल सेनापति मानसिंह 'मरदाना' नामक हाथी पर बैठा हुआ था। चेतक ने अपने पैर हाथी के सिर पर टिका दिए। महाराणा प्रताप ने अपने भाले का भरपूर प्रहार मानसिंह पर किया परंतु मानसिंह हौदे में छिप गया और उसके पीछे बैठा अंगरक्षक मारा गया व हौदे की छतरी का एक खंभा टूट गया। इसी समय हाथी की सूँड में बँधे हुए जहरीले खंजर से चेतक की टाँग कट गई।

उसी समय मुगलों की शाही सेना ने प्रताप को चारों ओर से घेर लिया। बड़ी सादड़ी का झाला मन्ना सेना को चीरते हुए राणा के पास पहुँचा और महाराणा से निवेदन किया कि ''आप राजचिह्न उतार कर मुझे दे दीजिए और आप इस समय युद्ध के मैदान से चले

जाएँ इसी में मेवाड़ की भलाई है।'' चेतक के घायल होने की स्थिति को देखकर राणा ने वैसा ही किया। राजचिह्न के बदलते ही सैंकड़ों तलवारें झाला मन्ना पर टूट पड़ी। झाला मन्ना इन प्रहारों का भरपूर सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

महाराणा प्रताप का स्वामीभक्त घोड़ा चेतक बलीचा गाँव में स्थित एक छोटा नाला पार करते हुए परलोक सिधार गया। इसी जगह 'बलीचा गाँव' में चेतक की छतरी बनी हुई है। महाराणा प्रताप जो कभी भी किसी परिस्थिति में नहीं रोए परंतु चेतक की मृत्यु पर उनकी आँखों में आँसू निकल पड़े। उसी समय 'ओ नीला घोड़ा रा असवार' शब्द राणा ने सुने। प्रताप ने सिर उठाकर देखा तो सामने उसके भाई शक्तिसिंह को पाया। शक्तिसिंह ने अपनी करनी पर लज्जित होकर बड़े भाई के चरण पकड़ कर क्षमा याचना की, महाराणा प्रताप ने उन्हें गले लगाया और क्षमा कर दिया। इसकी जानकारी हमें 'अमर काव्य वंशावली ग्रंथ व राजप्रशस्ति' से मिलती है। जिसकी रचना संस्कृत भाषा में रणछोड़ भट्ट नामक विद्वान ने की।

कुछ इतिहासकारों ने इसे परिणामविहीन अथवा 'अनिर्णित युद्ध की संज्ञा' दी है। परिणाम की समीक्षा हेतु निम्नलिखित आधार विवेचनीय हैं :–

उद्देश्यगत – अकबर का उद्देश्य महाराणा प्रताप को जीवित पकड़कर मुगल दरबार में खड़ा करना अथवा मार देना था या फिर उसका सम्पूर्ण राज्य अपने साम्राज्य में मिला देना था। लेकिन अकबर इन उद्देश्यों में विफल रहा।

मुगल सेना की विजय प्रामाणित नहीं होती है क्योंकि अकबर की मानसिंह व आसफ खाँ के प्रति नाराजगी जिसमें उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी गई, मुगल सेना का मेवाड़ में भयग्रस्त होकर समय निकालना एवं मेवाड़ की सेना का पीछा न करना ऐसे परिदृश्य हैं जो हल्दीघाटी युद्ध का परिणाम प्रताप के पक्ष में लाकर खड़ा कर देते हैं।

फरवरी 1577 ई. में स्वयं अकबर और अक्टूबर 1577 ई. से लेकर नवम्बर 1579 ई. तक शाहबाज खान का तीन बार लगातार मेवाड़ अभियान करना अकबर का अपना उद्देश्य पूरा करने के प्रयास थे, वे भी असफल रहे। महाराणा प्रताप कोल्यारी गाँव कमलनाथ पर्वत के निकट 'आवरगढ़' में अपनी अस्थायी राजधानी स्थापित करना एक विजेता का होना सिद्ध करना है।

1580 ई. में अकबर ने अब्दुल रहीम खानखाना को प्रताप के विरूद्ध युद्ध करने भेजा। अब्दुल रहीम खानखाना के साथ उसका परिवार भी आया जिसे उसने शेरपुर में छोड़ा। महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने मौका पाकर शेरपुर पर आक्रमण कर अब्दुल रहीम खानखाना के परिवार को बंदी बना लिया। महाराणा प्रताप इससे नाराज़ हुए और उन्होंने अमरसिंह को अब्दुल रहीम खानेखाना के परिवार को सम्मानपूर्वक वापस छोड़कर आने को कहा। कुम्भलगढ़ से 50 किमी. दूर उत्तर पूर्व में मेवाड़–मेरवाड़ा का सीमावर्ती क्षेत्र था। यह मुगलों का मुख्य थाना था। प्रताप ने अमरसिंह के साथ इस पर धावा बोल दिया। दिवेर की सम्पूर्ण घाटी पर प्रताप का अधिकार हो गया।

मुगल सम्राट अकबर ने 5 दिसम्बर 1584 ई. को आमेर के भारमल के छोटे पुत्र जगन्नाथ कछवाहा को प्रताप के विरुद्ध भेजा। जगन्नाथ कछवाहा को भी सफलता नहीं मिली अपितु उसकी की मांडलगढ़ में मृत्यु हो गई। जहाँ पर महाराणा प्रताप ने बदला लेने के लिए आमेर के क्षेत्र पर आक्रमण कर मालपुरा को लूटा व झालरा तालाब के निकट शिव मंदिर 'नीलकण्ठ महादेव' का निर्माण करवाया।

इस विजय के पश्चात् महाराणा प्रताप ने 1585 ई. के लगभग मेवाड़ के पश्चिमी–दक्षिणी भाग जो कि छप्पन के नाम से प्रसिद्ध था, के लूणा चावण्डियाँ को पराजित कर चावंड को अपनी आपातकालीन राजधानी बनाया। चावंड 1585 ई. से अगले 28 वर्षों तक मेवाड़ की राजधानी रही। यहीं पर महाराणा प्रताप ने चामुंडा माता का मंदिर बनवाया।

1597 ई. में धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाते हुए महाराणा प्रताप के चोट लगी, जिसके कारण 19 जनवरी 1597 ई.को उसकी ''चावंड'' में मृत्यु हो गई। चावंड से 11 मील दूर बांडोली गाँव के निकट बहने वाले नाले के तट पर महाराणा का दाह संस्कार किया गया। खेजड़ बाँध के किनारे 8 खंभों की छतरी आज भी हमें उस महान योद्धा की

चित्र 2.10 : महाराणा प्रताप द्वारा मानसिंह पर हमला

चित्र 2.11 : महाराणा प्रताप की समाधि (बान्डोली, चावण्ड)

याद दिलाती है।

प्रताप की मृत्यु का समाचार अकबर के कानों तक पहुँचा तो उसे भी बड़ा दुख हुआ। इस स्थिति का वर्णन अकबर के दरबार में उपस्थित दुरसा आढा ने इस प्रकार किया, 'अस लेगो अणदाग पाग लेगो अणनामी गहलोत राण जीती गयो दसण मूँद रसणा उसी, नीसास मूक मरिया नयण तो मृत शाह प्रतापसी'' आशय यह था कि राणा प्रताप तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँत में जीभ दबाई और निःश्वास से आँसू टपकाए क्योंकि तूने अपने घोड़े को नहीं दगवाया और अपनी पगड़ी को किसी के सामने नहीं झुकाया वास्तव में तू सब तरह से जीत गया।

विदेशी इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने हल्दीघाटी को 'मेवाड़ की थर्मोपल्ली' और दिवेर को 'मेवाड़ का मैराथन' कहा है।

राव चंद्रसेन (1562–1581 ई.) :

राव चंद्रसेन का जन्म 16 जुलाई, 1541 ई. हुआ। यह मालदेव झाला रानी स्वरूप दे का पुत्र था। स्वरूप दे ने मालदेव से कहकर चंद्रसेन को मारवाड़ का युवराज बनवाया था। मालदेव की मृत्यु हुई तब 31 दिसंबर, 1562 ई. चंद्रसेन भाईयों में छोटा होते हुए भी मारवाड़ का शासक बना। इसी कारण राव चंद्रसेन के दोनों भाई उससे नाराज हो गए। बड़े भाई राम ने अकबर की शरण में जाकर शाही सहायता की प्रार्थना की, अकबर भी इस समय इसी फिराक में था। अकबर ने शीघ्र ही हुसैन कुली खाँ के नेतृत्व में अपनी सेना जोधपुर की ओर भेजी, जिसने मई, 1564 ई. में जोधपुर के किले पर अधिकार कर लिया। मारवाड़ के राजा चंद्रसेन ने जोधपुर से भागकर भाद्राजूण में जाकर शरण ली। 1570 ई. में अकबर द्वारा लगाये गये नागौर दरबार में चन्द्रसेन गया परन्तु वहाँ पर अकबर के व्यवहार एवं अपने प्रतिस्पर्धी उदयसिंह को देखकर नागौर दरबार छोड़कर वहाँ से वापस चला आया।

इसका पता अकबर को चला तो उसने बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का अधिकारी नियुक्त कर दिया राव चंद्रसेन को दबाने के लिए अकबर ने अपनी सेना भाद्राजूण भेजी। भाद्राजूण से चंद्रसेन अपने भतीजे कल्ला (चंद्रसेन के भाई राम का पुत्र) के पास सोजत पहुँचा। यहाँ पर भी उसका पीछा करते हुए मुगल सेना आ गई। राव चंद्रसेन वहाँ से सिवाण (बाड़मेर) पहुँचा। सिवाण से चंद्रसेन सारण के पहाड़ों (पाली) में संचियाय नामक स्थान पर पहुँचा। जहाँ 11 जनवरी 1581 को उसका देहांत हो गया। वहीं पर चंद्रसेन की समाधि बनी हुई है। राव चंद्रसेन को विस्मृत नायक, भूला बिसरा राजा आदि नामों से भी जाना जाता है।

बीकानेर का रायसिंह (1574–1612 ई.) :

रायसिंह कल्याणमल राठौड़ का बड़ा पुत्र था। उसका जन्म 20 जुलाई 1541 ई. को हुआ। 1570 ई. में लगे नागौर दरबार में यह अकबर की शाही सेना में शामिल हो गया और शीघ्र ही अकबर का विश्वासपात्र बन गया।

अकबर ने रायसिंह को सर्वप्रथम 1572 ई. में जोधपुर का अधिकारी बनाया। रायसिंह के पिता कल्याणमल की 25 सितंबर 1574 ई. को मृत्यु होने के बाद रायसिंह बीकानेर का शासक बना। रायसिंह जब जोधपुर की व्यवस्था संभाल रहा था, तभी इब्राहीम मिर्जा ने नागौर में विद्रोह कर दिया। रायसिंह ने कठौली नाम गाँव में उसका दमन किया।

सिरोही के देवड़ा सुरताण व बीजा देवड़ा के मध्य अनबन हो गई, तब रायसिंह ने सिरोही पर आक्रमण करके बीजा को राज्य से बाहर निकाल दिया और आधा सिरोही मुगलों के अधीन कर मेवाड़ से नाराज होकर आए महाराणा प्रताप के सौतेले भाई जगमाल को दे दिया। सुरताण ने मुगलों पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओं के मध्य 1583 ई. को 'दत्ताणी नामक स्थान' पर युद्ध हुआ। दत्ताणी के युद्ध में जगमाल की मृत्यु हो गई और सुरताण ने सिरोही पर वापस अपना अधिकार कर लिया। अकबर ने रायसिंह से प्रसन्न होकर 1593 ई. में उसे जूनागढ़ प्रदेश दिया। उसने उसे 1604 ई. में शमशाबाद तथा नूरपुर की जागीर व 'राय' की उपाधि दी। रायसिंह ने 1589–94 ई. के मध्य अपने प्रधानमंत्री कर्मचंद की

देखरेख में जूनागढ़ (बीकानेर) का निर्माण करवाया तथा वहाँ एक प्रशस्ति लगवाई जिसे 'रायसिंह प्रशस्ति' के नाम से जाना जाता है। रायसिंह साहित्यकार भी था, उसने रायसिंह महोत्सव, वैद्यक वंशावली, ज्योतिश रत्नमाला, ज्योतिश ग्रंथों की भाषा पर बाल बोधिनी नामक टीका लिखी। 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' ग्रंथ में रायसिंह को ''राजेंद्र'' पुकारा गया है।

रायसिंह के शासन काल में बीकानेर में अकाल पड़ा। रायसिंह ने जगह–जगह 'सदाव्रत' खोले एवं पशुओं के लिए चारे–पानी की व्यवस्था की। बीकानेरी चित्रकला की शुरूआत रायसिंह के शासन काल में मानी जाती है। रायसिंह की मृत्यु दक्षिण भारत में एक स्थान पर बुरहानपुर में 21 जनवरी 1612 ई. को हुई। रायसिंह ने दक्षिण भारत में एक स्थान पर रेगिस्तान के फोग नामक झाड़ी को देखकर उससे वह लिपट गया तथा कहा कि–

''तूँ सैं देशी रूखड़ा, म्हैं परदेशी लोग।
म्हानें अकबर तेड़ियाँ, क्यों तूँ आयो फोग।।

अर्थात् तू देशी पौधा है, मैं परदेसी व्यक्ति हूँ। मुझे तो अकबर ने यहाँ जबरदस्ती भेजा है, पर हे! फोग तू यहाँ क्यों आया है?

चित्र 2.12 महाराज सवाई जयसिंह

सवाई जयसिंह/जयसिंह द्वितीय (1699–1743 ई.):– जयसिंह का जन्म 3 सितम्बर 1688 ई. को हुआ। जयसिंह द्वितीय के पिता का नाम बिशनसिंह था। शुरू में इनका नाम विजयसिंह व इनके छोटे भाई का नाम जयसिंह था। औरंगजेब ने इनकी योग्यता से प्रभावित होकर इनका नाम जयसिंह तथा इनके छोटे भाई का नाम विजयसिंह कर दिया। 1699 ई. में सवाई जयसिंह के पिता बिसनसिंह की मृत्यु हुई। सवाई जयसिंह 19 दिसंबर 1699 ई. को आमेर का शासक बना।

फरवरी 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। औरंगजेब के पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध शुरू हो गया। औरंगजेब के चार पुत्र मुअज्जम, आजम, कामबख्श और अकबर थे। अकबर भारत छोड़कर पारस चला गया था। कामबख्श को राजा बनने की कोई इच्छा नहीं थी। अतः मुअज्जम व आजम दोनों के मध्य 1707 ई. में ''जाजऊ के मैदान'' (उत्तर प्रदेश) में युद्ध हुआ। सवाई जयसिंह ने इस युद्ध में भाग लेते हुए आजम का साथ दिया। मुअज्जम ने सवाई जयसिंह के भाई विजयसिंह को अपनी ओर मिला लिया। इस युद्ध में मुअज्जम की विजय हुई। जीतने के बाद मुअज्जम ने सर्वप्रथम अपना नाम बहादुरशाह प्रथम रखा। विजयसिंह को आमेर का शासक बनाया गया और आमेर का नाम 'इस्लामाबाद' और बाद में 'मोमिनाबाद' कर दिया गया। आमेर के शासक सवाई जयसिंह और मारवाड़ के शासक अजीतसिंह को बहादुरशाह ने सूबेदार नियुक्त किया। अमरसिंह द्वितीय ने शर्त रखी कि सवाई जयसिंह मेरी पुत्री चंद्रकुंवरी के साथ शादी करे और उसका पुत्र ही आमेर का आगामी राजा बने। जयसिंह ने यह शर्त मान ली। इसे 'देबारी समझौता' भी कहा जाता है।

अमरसिंह द्वितीय आमेर के सवाई जयसिंह व मारवाड़ के अजीतसिंह को सहायता देने को तैयार हो गया। इसका पता जब बहादुरशाह प्रथम को चला तो वह नाराज हुआ। कुछ समय बाद उसने दानों को माफ़ कर दिया।

भरतपुर रियासत में चूड़ामन ने विद्रोह कर दिया। रंगीला ने उसे दबाने के लिए 1722 ई. में जयसिंह को भेजा। जयसिंह ने चूडामन के भतीजे बदनसिंह को अपनी तरफ मिलाकर चूड़ामन को भरतपुर से खदेड़ दिया। जयसिंह ने बदनसिंह को 'ब्रजराज' की उपाधि व डीग की जागीर दी। जाटों के दमन से प्रसन्न होकर मुहम्मद शाह ने जयसिंह को 'राजराजेश्वर श्री राजाधिराज सवाई' की उपाधि से विभूषित किया।

सवाई जयसिंह ने 1725 ई. में नक्षत्रों की गति की गणना करने के लिए एक शुद्ध सारणी का निर्माण करवाया। जयसिंह ने ज्योतिश विद्या पर 'जयसिंह कारिका' नामक ग्रंथ लिखा। जयसिंह ने भारत में ज्योतिष के अध्ययन के लिए पाँच वैद्य शालाएँ बनवाईं ये जयपुर, दिल्ली, मथुरा, बनारस और उज्जैन में स्थित हुईं। जयपुर का जंतर–मंतर पाँचों वैधशालाओं में सबसे बड़ी वैधशाला है, जुलाई 2010 ई. में इसे यूनेस्कों की विश्व धरोहर सूची में सम्मिलित कर लिया गया है। जयपुर का प्राचीन नाम जयनगर था। सवाई जयसिंह ने आमेर की जगह जयपुर को कछवाहा राजवंश की राजधानी बनाया। जयपुर की स्थापना से पूर्व इस स्थान पर एक शिकार होदी स्थित थी। इसी होदी को सवाई जयसिंह ने बादल महल का रूप दे दिया और जयपुर शहर के निर्माण की शुरुआत की।

सवाई जयसिंह अंतिम हिंदू शासक था, जिसने 1740 ई. में कई यज्ञ करवाये। यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के रहने के लिए सवाई जयसिंह ने जलमहलों का निर्माण करवाया। 21 सितम्बर, 1743 ई. में रक्त विकार से जयसिंह की मृत्यु आमेर में हो गई।

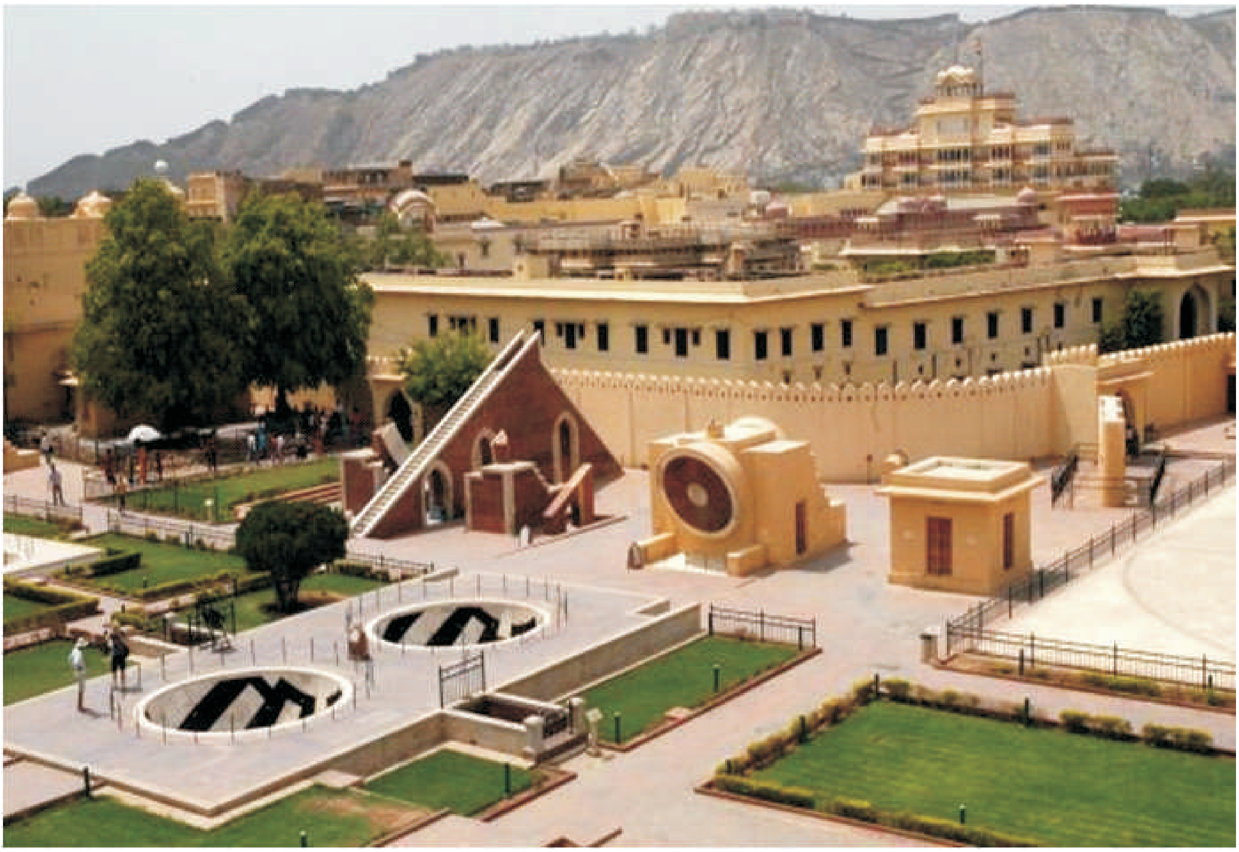

चित्र 2.13 : जंतर मंतर, जयपुर (सौर वेधशाला, सवाई जयसिंह द्वारा निर्मित)

चित्र 214 : अमरसिंह राठौड़ (जोधपुर)

अमरसिंह राठौड़ः—

जोधपुर के महाराजा गजसिंह के तीन पुत्र थे बड़ा अमरसिंह, दूसरा जसवंत सिंह व तीसरा अचल सिंह जो कि बचपन में ही मर गया था। अमरसिंह राठौड़ पराक्रमी व निडर था। उसके पास उसी के स्वभाव के कई राजपूत युवक जमा हो गए। गजसिंह ने अनारा नामक पासवान के बहकावे में आकर अमरसिंह को राज्याधिकार से वंचित कर देश से निकाल दिया। अमरसिंह राठौड़ मुगल बादशाह की सेवा में जा पहुँचा। जहाँ उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उसे 'राव' की उपाधि दी।

एक बार अमरसिंह राठौड़ 15 दिनों तक मुगल दरबार से अनुपस्थित रहा। बादशाह शाहजहाँ ने उससे उसकी अनुपस्थिति का कारण पूछा तो अमर ने स्वाभिमान के साथ उत्तर दिया कि, ''मैं केवल शिकार के लिए गया था अतः दरबार में नहीं आ सका। जहाँ तक जुर्माना अदा करने की बात है मेरी तलवार ही मेरी सम्पत्ति है।'' जुर्माने को वसूल करने के लिए बख्शी सलावत खाँ को उसके पास भेजा। अमरसिंह ने जुर्माना देने से इंकार कर दिया। बादशाह ने अमरसिंह को तुरंत हाजिर होने का आदेश भिजवाया। अमरसिंह राठौड़ ने आदेश का पालन किया और दीवाने खास में पहुँचकर बादशाह का अभिवादन किया। वहाँ पहुँचते ही दरबार में उपस्थित सलावत खाँ ने उसको गंवार कहा। यह शब्द अमरसिंह सुन नहीं सका और सलावत खाँ पर आक्रमण कर उसके सीने में कटार उतार दी। इसके बाद अमरसिंह ने बादशाह शाहजहाँ पर आक्रमण कर दिया, किंतु शाहजहाँ बच गया। भयभीत बादशाह जनाना महलों में भाग गया। अमरसिंह के साले अर्जुन गौड़ ने इनाम के लालच में धोखे से अमरसिंह पर आक्रमण कर उसे मार दिया। यह सुनकर अमरसिंह के सरदारों और सैनिकों के खून में उबाल आ गया और उन्होंने उसी समय दिल्ली जाकर शाहजहाँ के निवास

स्थान लाल किले में बुखारा द्वार से प्रवेश किया। राठौड़ों की संख्या मुगलों की सेना के सामने नाममात्र की थी इसलिए सभी राठौड़ लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। लाल किले के बुखारा द्वार को उसी दिन ईंटों से बंद करा दिया गया और उसी दिन से वह द्वार 'अमरसिंह का फाटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह फाटक अनेक वर्षों तक बंद रहा परंतु 1809 ई. में जॉर्ज स्टील नामक अंग्रेज अफ़सर के आदेश से उसे खोला गया।

(iv) मराठों का इतिहास –मराठा शक्ति का उत्कर्ष किसी एक व्यक्ति का कार्य न होकर, एक विशेष समय में उत्पन्न हुई, अस्थायी परिस्थितियों का ही परिणाम था। भारत के पश्चिम–दक्षिणी भाग में स्थित दक्कन के पठारों को सम्प्रति महाराष्ट्र के नाम से जाना जाता है। अधिकांश भाग पठारी होने के कारण वहाँ के निवासी परिश्रमी और साहसी रहे हैं। मराठा कहे जाने वाले महाराष्ट्रवासी छोटे कद और मजबूत शरीर वाले होते हैं। गुरिल्ला युद्ध में कुशल होते थे। वे खुले युद्ध से भरसक बचते थे और अपने दुश्मनों पर छिप कर वार करते थे। 15वीं और 16वीं शताब्दी के धर्म–सुधार और भक्ति आन्दोलन ने सामाजिक एकता को और अधिक सुदृढ़ किया। दक्षिण में जन–साधारण आधारित इस धार्मिक आन्दोलन का नेतृत्व तुकाराम, रामदास, एकनाथ, वामन पंडित इत्यादि संतों और दार्शनिकों ने किया था। यह आंदोलन ऊँच–नीच, जाति व्यवस्था और कर्मकांड के विरुद्ध था, जिसने सभी के लिए 'भक्ति' द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया। मराठी भाषा बहुत सरल और व्यावहारिक थी।

चित्र 2.15 : छत्रपति शिवाजी महाराज

छत्रपति शिवाजी (1627–1680ई.):– 20 अप्रैल, 1627 ई. को शिवनेर के दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ। वे शाहजी भोंसले की प्रथम पत्नी जीजाबाई के पुत्र थे। शाहजी बीजापुर के एक सामंत थे, जिन्होंने तुकाबाई मोहिते नामक एक अन्य स्त्री से विवाह कर लिया था। इसी कारण जीजाबाई उनसे अलग रहती थी। बालक शिवाजी का लालन–पालन उनके स्थानीय संरक्षक दादाजी कोणदेव तथा जीजाबाई के गुरू समर्थ स्वामी रामदास की देखरेख में हुआ। जिन्होंने उन्हें मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रेरित किया। दादाजी कोंणदेव से उन्होंने सेना और शासन की शिक्षा पायी थी। 12 वर्ष की अल्पायु में शिवाजी ने अपने पिता से पूना की जागीर प्राप्त की। सर्वप्रथम 1646 ई. में 19 वर्ष की आयु में उन्होंने कुछ मावले युवको का एक दल बनाकर पूना के निकट स्थित तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लिया। 1646 ई. में ही उन्होंने बीजापुर के सुल्तान से रायगढ़, चाकन तथा 1647 ई. में बारामती, इन्द्रपुर, सिंहगढ़ तथा पुरन्दर का दुर्ग भी छीन लिया। 1656 ई. में शिवाजी ने कोंकण में कल्याण और जावली का दुर्ग भी अधिकृत कर लिया। 1656 में ही उन्होंने अपनी राजधानी 'रायगढ़' में बनायी। शिवाजी के साम्राज्य विस्तार की नीति से रूष्ट होकर बीजापुर के सुल्तान ने 1659 ई. में अफ़जल खाँ नामक अपने सेनापति को उनका दमन करने के लिए भेजा। संधिवार्ता के दौरान अफ़जल खाँ द्वारा धोखा देने पर शिवाजी ने बघनखे से उसका पेट फाड़ डाला। 1663 ई. में दक्कन के मुगल वायसराय शायस्ता खाँ को शिवाजी के दमनार्थ औरंगजेब ने नियुक्त किया, जिसने शिवाजी के केन्द्र स्थल पूना पर अधिकार कर लिया। लेकिन शीघ्र ही शिवाजी ने शायस्ता खाँ के शिविर पर रात्रि में आक्रमण किया, जिसमें उसे अपना एक पुत्र और अपने हाथ की तीन उँगलियाँ गवांकर भागना पड़ा। 1664 ई. में शिवाजी ने मुगलों के अधीन सूरत को लूटा। इन सभी गतिविधियों से क्रूद्ध होकर औरंगजेब ने अपने मंत्री आमेर के राजा मिर्जा जयसिंह और दिलेर खान को भेजा। मुगल सेना ने उनके अनेक किले अधिकृत कर लिए। विवश होकर शिवाजी ने जयसिंह के साथ 1665 ई. में संधि कर ली जो पुरंदर की संधि के नाम से विदित है। इस संधि के निम्न प्रावधान थे–

1. शिवाजी ने अपने कुल 35 दुर्गों में से 23 मुगलों को सौंप दिये और मात्र 12 अपने पास रखे, और
2. शिवाजी के बड़े पुत्र शम्भाजी को मुगल दरबार में पाँच हजारी मनसबदार बनाया गया।

राजा जयसिंह द्वारा शिवाजी को आगरा स्थित मुगल दरबार में उपस्थित होने के लिए भी आश्वस्त किया गया। जयसिंह ने उनसे कहा कि उन्हें दक्षिण के मुगल सूबों का सूबेदार बना दिया जायेगा। मई, 1666 ई. में शिवाजी शाही दरबार में उपस्थित हुए, जहाँ उनके साथ तृतीय श्रेणी के मनसबदारों जैसा व्यवहार किया गया और उन्हें नजरबंद भी कर दिया गया। लेकिन नवम्बर, 1666 ई. में वे अपने पुत्र शम्भाजी के साथ गुप्त रूप से कैद से निकल भागे और सुरक्षित अपने घर पहुँच गये। अगले वर्ष ही औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की उपाधि और बरार की जागीर प्रदान की। दो वर्ष तक शिवाजी ने शांति बनाये रखी। लेकिन 1670 ई. में उन्होंने विद्रोह कर मुगलों की अधीनता में चले जाने वाले अपने सभी किलों पर कब्जा कर लिया। खानदेश के कुछ भू–भागों में स्थानीय मुगल पदाधिकारियों को सुरक्षा का वचन देकर उनसे चौथ (आय का चौथाई भाग) वसूलने का लिखित समझौता भी उन्होंने किया। 1670 ई. में उन्होंने सूरत को दुबारा लूटा। 1674 ई. में 'रायगढ़' के दुर्ग में शिवाजी ने महाराष्ट्र के स्वतंत्र शासक के रूप में अपना राज्याभिषेक कराया, इस अवसर पर उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि भी धारण की। 1680 ई. में शिवाजी की मृत्यु हो गयी। इस समय उनका मराठा राज्य बेलगाँव से लेकर तुंगभद्रा नदी के तट तक समस्त पश्चिमी कर्नाटक में विस्तृत था। इस प्रकार मुगल शक्ति, बीजापुर के सुल्तान, गोवा के पुर्तगालियों और जंजीरा स्थित अबीसीनिया के समुद्री डाकुओं के प्रबल प्रतिरोध के बावजूद शिवाजी ने दक्षिण भारत में एक स्वतंत्र हिंदवी स्वराज्य की स्थापना की।

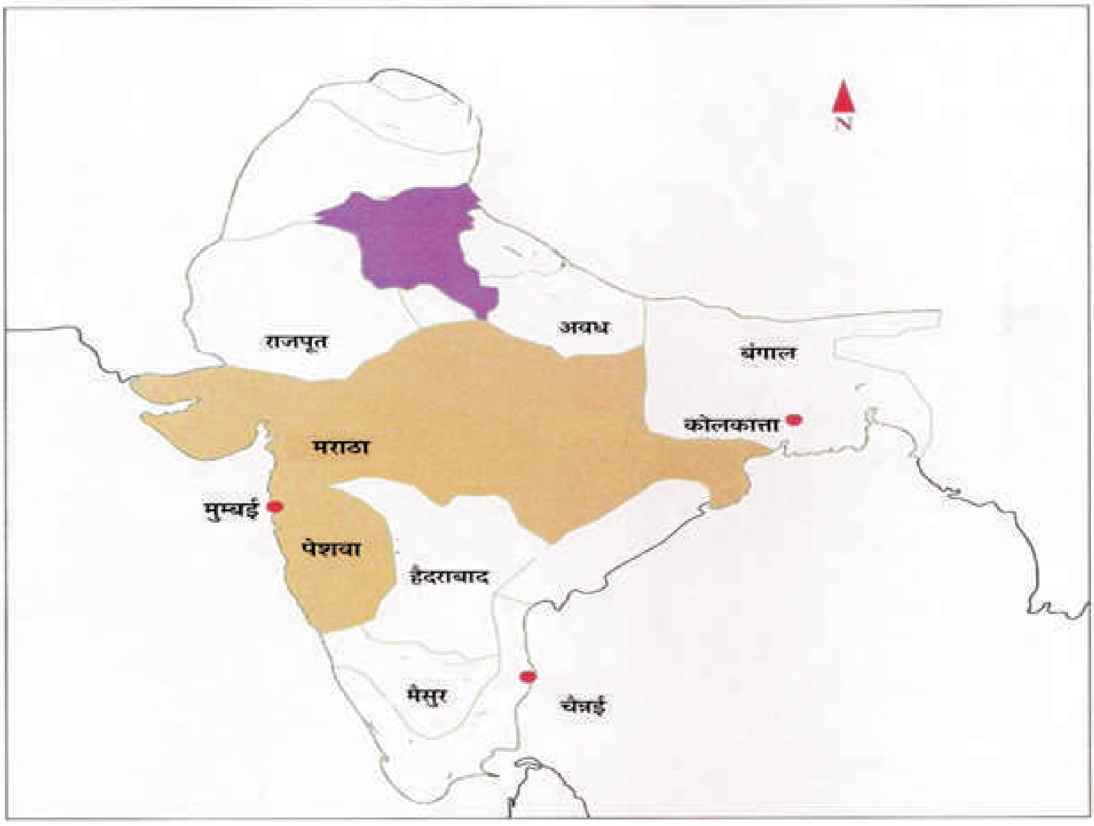

मानचित्र 2.16 : छत्रपति शिवाजी महाराज का साम्राज्य

चित्र 2.17 : अफजल खान का शिवाजी द्वारा वध

चित्र 2.18 : रायगढ़ का किला (महाराष्ट्र)

(v) विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य :

विजय नगर साम्राज्य – संगम के पांच पुत्रों ने जिसमें हरिहर तथा बुक्का सर्वाधिक प्रसिद्ध थे, तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर विजयनगर राज्य की नींव डाली। वे वारंगल के काकतियों के सामंत थे और बाद में आधुनिक कर्नाटक में काम्पिली राज्य के मंत्री बने थे। मुहम्मद तुगलक ने काम्पिली को रौंदे जाने पर इन दोनों भाइयों को बन्दी बना लिया गया व बाद में मुक्त कर दिया गया। उनके गुरू विद्यारण्य के प्रयत्न से इनकी शुद्धि हुई और उन्होंने विजयनगर में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया, जो शीघ्र ही दक्षिण भारत का शक्तिशाली राज्य बन गया। आज इसकी राजधानी विजयनगर की पहचान हम्पी नामक स्थल खंडहरों से की जाती है, जिसे विश्व विरासत संरक्षण के अन्तर्गत यूनेस्को द्वारा सम्मिलित कर लिया गया है।

हरिहर का राज्यारोहण 1336 ई. में हुआ। इसने होयसल के सारे प्रदेश को 1346 ई. में विजयनगर के अधिकार में ला दिया। बुक्का 1346 ई. में अपने भाई हरिहर का उत्तराधिकारी बना। उसने 1377 ई. तक राज्य किया। सारे दक्षिण भारत, रामेश्वरम्, तमिल व चेर प्रदेश तक बुक्का ने विजयनगर साम्राज्य को फैलाया। हरिहर द्वितीय (1377–1406 ई.) बुक्का का उत्तराधिकारी था। इस काल में

चित्र 2.19 : विजयनगर साम्राज्य वर्तमान में हम्पी खण्डहर के रूप में

उसका मुस्लिम शासको के साथ संघर्ष हुआ। यह शिव के 'विरूपाक्ष' रूप का उपासक था। इस काल में मैसूर, वनारा, त्रिचनापल्ली तथा कांजीवरम् सहित दक्षिण भारत तक विजयनगर साम्राज्य फैल गया। देवराय प्रथम (1406–1422 ई.) को हरिहर द्वितीय की तरह बहमनी सुल्तानों से पराजय मिली। 1422 ई. से 1426 ई. तक बुक्का के पुत्र देवराय द्वितीय ने शासन किया। इसे गजबेटकर (हाथियों का शिकारी) की उपाधि मिली। इसने बहमनी राज्य का मुकाबला करने हेतु पहली बार सेना में मुस्लिमों को भर्ती किया। इटली के यात्री निकालोकोन्टी एवं फारस के दूत अब्दुर्रज्जाक ने इसी काल में विजयनगर का भ्रमण किया। इस काल में विजयनगर साम्राज्य की सीमा सीलोन (श्रीलंका) के सामुद्रिक तटों तक पहुँच गयी थी। इस साम्राज्य के अन्तिम शासक क्रमशः मल्लिकार्जुन एवं विरूपाक्ष थे।

बहमनी साम्राज्य–

दक्षिण में बहमनी राज्य एवं राजवंश का आरम्भ मुहम्मद तुगलक के एक अधिकारी हसन (जफरशाह) ने 1347 ई. में किया। हसन ने दक्षिण के अमीरों की सहानुभूति प्राप्त करके, तुगलक के खिलाफ फैले विद्रोह का फायदा उठाकर अपना राज्य स्थापित किया। यह फारस के वीर योद्धा बहमन का वंशज था। इसने अल्लाउद्दीन बहमन शाह का खिताब धारण किया। कुलबर्ग में अपनी राजधानी बनाई। इसकी मृत्यु (1358 ई.) के समय बहमनी राज्य उत्तर में पेनगंगा से दक्षिण में कृष्णा नदी और पश्चिम में गोवा से पूर्व में भोंगिर तक फैल गया था।

विजयनगर की पश्चिमी सीमा बहमनी राज्य से टकराती थी। अतः दोनों साम्राज्यों में संघर्ष चलता रहा। मुकदल एवं रायचूर दो सीमान्त किलों पर अधिकार भी युद्ध का कारण रहा। बहमनी नवें सुल्तान अहमद ने कुलबर्ग से राजधानी हटाकर बीदर को बनाया। बहमनी राज्य में मुस्लिम अल्पसंख्यक थे अतः प्रोत्साहन वश कई विदेशी शिया मुस्लिम बहमनी जाकर बस गये। इस कारण दक्षिणी और अबीसीनियाई सुन्नी मुस्लिम नाराज हो गये। 13वें सुल्तान मुहम्मद तृतीय ने मुहम्मदगंवा जो राज्य का सेवक रहा था, को फांसी दे दी। गवां की मृत्यु के बाद बहमनी राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। आखिरी सुल्तान महमूद के राज्यकाल में बहमनी साम्राज्य के पांच स्वतंत्र राज्य बरार, बीदर, अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुर बन गये, जिनके सूबेदारों ने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। बहमनी राज्य में साधारण प्रजा की दशा दयनीय थी, जैसा कि रूसी व्यापारी एथानासियस निकितिन ने लिखा है, जिसने बहमनी राज्य का चार वर्षों(1470–74 ई.) तक भ्रमण किया।

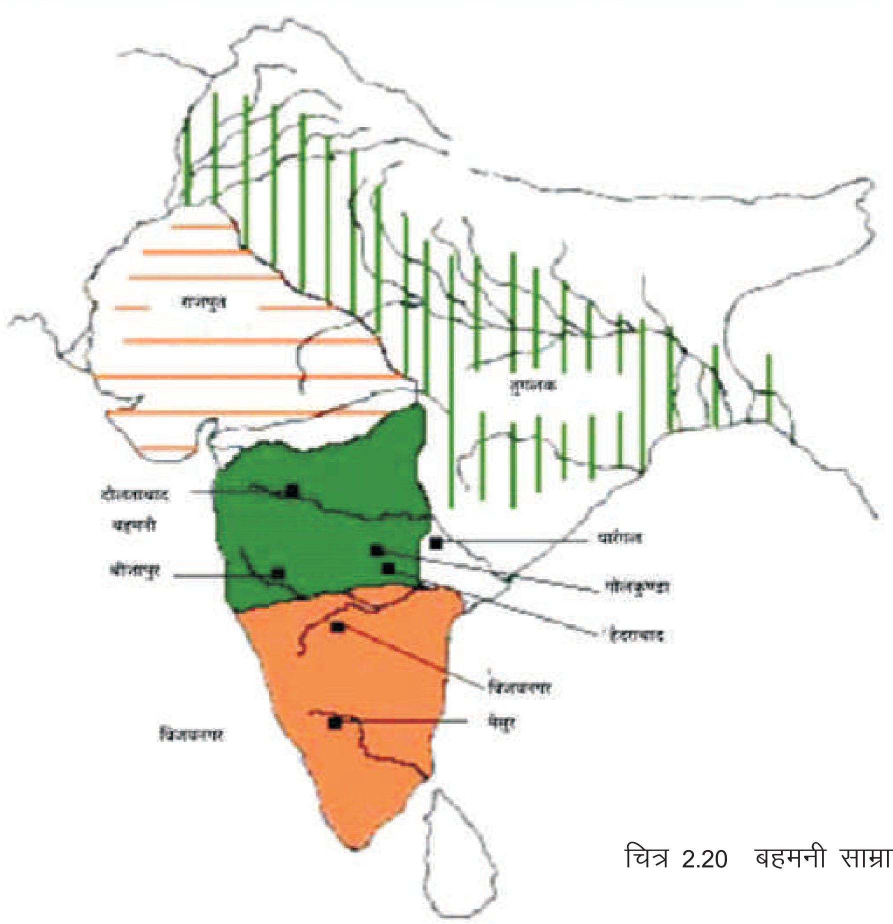

चित्र 2.20 बहमनी साम्राज्य

चित्र 2.21 : गुरू नानक देव

(vi) सिक्ख धर्म का प्रादुर्भाव एवं विकास –

(गोविन्द सिंह बन्दा बैरागी एवं रणजीत सिंह सहित)

तेहरहवीं सदी के प्रारम्भ से ही पंजाब में मुस्लिम राज्य की स्थापना हो गई। मुस्लिम शासकों ने मजहबी–राज्य की स्थापना के अन्तर्गत मुस्लिमों को उच्च स्थान एवं हिन्दुओं को दूसरे दर्जे का स्थान दिया। दिल्ली सल्तनत की मजहबी कट्टरता की नीति से संघर्ष प्रारंभ हुआ। देवालयों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण आम बात थी। असहिष्णुता एवं घृणा का वातावरण बनता जा रहा था। ऐसे वातावरण में 15 अप्रैल 1469 ई. को गुरू नानक देव का जन्म हुआ। इनका विवाह सुलखनी के साथ हुआ। नानक की अध्यात्म के प्रति रूचि थी। नानक ने ''मानुष की जात सबै एक'' इसी तत्त्व का प्रचार करते हुए भारत भ्रमण किया। इनकी इस तरह की यात्राओं को उदासियाँ कहा जाता है। गुरू नानक देव की शिक्षाएँ – एक ईश्वर में विश्वास, नाम की महानता और उपासना, गुरू की महानता इत्यादि थी। मानव को शुभ कर्म करने पर बल दिया एवं जाति–पाँति, ऊँच–नीच का विरोध कर समाज सुधार का कार्य किया। उनका कहना था – ''करमा दे होगणे नवेड़े, जाति किसे पूछणी नहीं।'' जपुजी, पट्टी, आरती, रहिराम एवं बारह माह इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। सिक्ख धर्म का प्रवर्तन कर नानक ने विश्व के धर्म सुधारकों एवं समाज सुधारकों में अपना स्थान बना लिया। नानक देव की शिक्षाओं को स्पष्ट करने का कार्य गुरु अंगद ने किया जो नानक के शिष्य थे। उन्होंने इस हेतु गुरूमुखी लिपि का विकास किया, नानक देव की वाणी को गुरू–वाणी के रूप में लिपिबद्ध कराया, लंगर प्रथा का प्रचलन सत्संग के केन्द्र 'मन्झियां' की स्थापना, गुरू ग्रन्थ साहब संकलित करवाना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य किये। 1552 ई. में गुरू अंगद की मृत्यु व्यास नदी के किनारे हुई। शिष्य अमरदास को नया गुरू बनाया गया। उन्होंने लंगर प्रथा, मंझी प्रथा को कठोरता से लागू किया, वैसाखी को त्योंहार बनाया एवं सती प्रथा का विरोध किया। बादशाह अकबर भी उनके दर्शन करने गोईंदवाल स्थान पर आया था। गोईंदवाल स्थान गुरू अमरदास के कारण तीर्थ स्थान माना जाता है।

गुरु रामदास (1574–81 ई.):– ने धार्मिक केन्द्रों की संख्या को बढ़ाया और 500 बीघा जमीन पर विशाल सरोवर बनाया जो 'अमृतसर' कहलाया। सिक्खों का विख्यात नगर अमृतसर इसी नाम से है। यहाँ के शक्तिशाली, समृद्ध किसान सिक्ख धर्म के अनुयायी बने। गुरू रामदास के कहने पर हरिद्वार यात्रा पर लगने वाला कर अकबर ने हटाया। अकबर से मित्रता रखकर रामदास ने सिक्खों की संख्या में वृद्धि की। गुरू रामदास ने गरीबों को दान देने की मसन्द प्रथा का प्रचलन किया। अब गुरू सतगुरू के साथ–साथ 'सच्चा पातशाह' भी कहलाने लगे।

गुरु अर्जुन देव (1581–1606 ई.)– सिक्खों के पांचवे गुरु थे। ये सिक्ख धर्म के सच्चे संगठनकर्त्ता सिद्ध हुए। धार्मिक अधिकारों के साथ राजनीतिक अधिकार से भी गुरू को सम्पन्न किया। जहांगीर के विद्रोही खुसरो को आशीर्वाद देने से जहांगीर ने इन्हें प्राणदण्ड दिया। आदिग्रन्थ का संकलन, मसन्द प्रथा को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करना, धन संग्रह हेतु विदेशों में अनुयायी भेजना ऐसे कार्य थे जिनसे सिक्ख धर्म आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुआ। अर्जुनदेव का प्राण बलिदान सिक्खों में सैन्य शक्ति के रूप में शक्तिशाली बनने का बदलाव ले आया। अर्जुनदेव का शहीद हो जाना सिक्ख धर्म के इतिहास की एक युगान्तकारी महान् घटना थी, जिससे शांतिप्रिय सिक्ख संघर्ष प्रेमी हो गये। सिक्ख अब एक सैनिक संघ बन गया। गुरू अर्जुन देव का पुत्र गुरू **हरगोविन्द सिंह (1606–1645 ई.)** सिक्ख गुरू बने। इन्होंने 'सैली' (ऊन की माला) की जगह दो तलवार धारण की। एक तलवार 'पीरी' धार्मिक गद्दी एवं दूसरी 'मीरी' राजनीतिक पदवी की प्रतीक थी। भेंट में धन के स्थान पर अस्त्र–शस्त्र लेना प्रारंभ किया। हर मन्दिर के पास एक भवन बनवाया जिसमें एक ऊँचा तख्त बनाया गया। इसका निर्माण 1699 ई. में हुआ। इसे 'अकाल तख्त' कहा गया। यह सिक्खों की राजनीतिक प्रभुता का प्रतीक बन कर उभरा। जहांगीर ने गुरू अर्जुनदेव का आर्थिक जुर्माना पुत्र गुरू हरगोविन्द से वसूल करना चाहा। इंकार करने पर गुरू हरगोविन्द को जेल में बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में रखा।

हालांकि हरगोविन्द ने सिक्ख पंथ को सैनिक रूप देने का कार्य आरम्भ कर दिया था परन्तु बाद के सिक्ख गुरू हरिराय (1645–1661 ई.) हरिकृष्ण 1661–1664 ई.), तेग बहादुर (1664–1675 ई.) सिक्ख पंथ का प्रचार करने का ही कार्य किया। तेगबहादुर द्वारा मजहब स्वीकार न करने पर औरंगजेब ने उनका सिर कटवा दिया। उनके लिए लिखा गया है कि– ''सिर दिया पर सार (सिरड़) नहीं दिया''। दिल्ली में उनका स्मारक चाँदनी चौक में 'सीसगंज गुरूद्वारा' नाम से प्रसिद्ध है।

चित्र 2.22 : स्वर्ण मंदिर, अमृतसर

चित्र 2.23 : गुरू गोविन्द सिंह

गुरू गोविन्द सिंह (1675–1708ई.):–

ये गुरू तेगबहादुर के पुत्र थे। ये सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरू हुए। पंजाब पर औरंगजेब के अत्याचारों का विरोध करने हेतु उन्होंने शस्त्र एवं शास्त्र शिक्षा हेतु शिक्षण केन्द्रों का विकास किया। इससे सिक्ख संप्रदाय सक्षम बना। लाहौर के सूबेदार को 'नदौण के युद्ध' में पराजित किया। सिक्खों को सुसंगठित करने, उनकी कुरीतियाँ हटाने एवं नवचेतना जागृत करने के उद्देश्य से खालसा पंथ की स्थापना 1699 ई. में की। बलिदानी पांच भक्तों द्वारा पंज प्यारों, पाहुल (चरणामृत) एवं अमृत छकाणा (पताशे घुला पानी) की नई प्रथा प्रारंभ की। खालसा पंथ के सिक्खों को पांच 'ककार' अर्थात् कड़ा, केश, कच्छ, कृपाण और कंघा रखना आवश्यक था। औरंगजेब से युद्ध की आशंका के कारण उन्होंने 1699 ई. में ही आनन्दपुर साहिब में एक सैनिक केन्द्र खोल दिया। गुरु गोविन्द सिंह धार्मिक स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय उन्नति का ऊँचा आदर्श रखते हुए सिक्खों के उत्कर्ष में लगे रहे। 1705 ई. में मुगलों के आक्रमण के कारण उन्हें आनन्दपुर छोड़ना पड़ा। आनन्दपुर में छूटे दोनों पुत्रों जोरावर सिंह व फतहसिंह को कैद कर सरहिन्द के किले में दीवार में जिन्दा चुनवा दिया गया, परन्तु उन्होंने धर्म परिवर्तन नहीं किया। चमकोर के युद्ध में अपने अन्य दो पुत्रों अजीत सिंह व जुंझार सिंह शहीद हुए। खुदराना के संघर्ष में चालीस सिक्खों ने वीरगति प्राप्त की, उन्हें 'मुक्ता' एवं स्थान को मुक्तसर कहा गया। गुरू गोविन्दसिंह आनन्दपुर से अन्ततः तलवंडी पहुँचे जहाँ एक वर्ष तक उन्होंने साहित्यिक लेखन का कार्य किया। औरंगजेब के निमंत्रण पर वे मिलने जा रहे तभी उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। 1 अक्टूबर 1708 ई. को गुरू गोविन्द सिंह भी परलोक सिधार गये।

चित्र 2.24 : बन्दा बैरागी

चित्र 2.25 : महाराजा रणजीत सिंह

बन्दा बैरागी (1708–1716 ई.):–

बन्दा बैरागी (बहादुर) का मूल नाम माधोदास था। इनका 1670 ई. में राजपूत परिवार में जन्म हुआ था और गोदावरी के तट पर आश्रम में निवास करते थे। गुरूगोविन्द सिंह के दक्षिण प्रवास के समय इन्होंने स्वयं को गुरू का 'बन्दा' कहा अतः बन्दा वैरागी के नाम से पहचाने गये। गुरू की आज्ञा से वे गुरू का शेष कार्य पूरा करने पंजाब में पहुँचे। इस समय सूबेदार वजीर खाँ के जुल्मों से पंजाब के लोग परेशान थे। ये सभी बन्दा के नेतृत्व में संगठित हो गये। बन्दा ने सर्वप्रथम 'सरहिन्द' पर धावा बोला। वजीर खाँ ने जिहाद का नारा देकर पंजाब के समस्त मुस्लिमों से बंदा का मुकाबला करने का आह्वान किया। माझा के मुझायल जाटों के सहयोग से छप्पर चिड़ी नामक स्थान पर वजीर खाँ के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। 36 लाख वार्षिक राजस्व वाले प्रदेश पर बन्दा शासन करने लगा। किसानों को राहत देने के लिये बंदा ने जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी। सरहिन्द की विजय से उत्साहित सिक्खों ने अमृतसर, बटाला, कलानौर और पठानकोट पर अधिकार कर लिया। पंजाब में मुगल प्रशासन समाप्त हो गया। मुगल सम्राट बहादुरशाह को पंजाब में सेना भेजनी पड़ी। बन्दा लोहगढ़ के पहाड़ी दुर्ग में चला गया। उसने मुगल सैनिकों पर छापामार नीति से आक्रमण प्रारंभ किये। बहादुरशाह की 28 फरवरी 1712 ई. को मृत्यु हो गई। नये मुगल बादशाह फर्रूखसियर ने सफदर खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना बन्दा के खिलाफ भेजी। डेराबाबा में लम्बे समय तक घिरे रहने के बाद बन्दा ने आत्मसमर्पण किया। दिल्ली में वह अपने सैंकड़ों साथियों के साथ मौत के घाट उतार दिया गया।

बन्दा बैरागी महान् त्यागी, साहसी, शूरवीर और धर्म का रक्षक था। इन्होने मुगलों का निर्भयता से मुकाबला करके सिक्खों में नवचेतना का संचार किया था।

रणजीत सिंह :–

रणजीत सिंह का जन्म 13 नवम्बर, 1780 ई. में गुजरांवाला में हुआ। इनके दादा चाकिया मिसल के वीर नेता थे। उन्होंने अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध कई युद्ध किए। इनके पिता महासिंह थे, जिनकी मृत्यु 1792 ई. में हुई। 1792 से 1797 ई. तक शासन परिषद्, जिसमें इनकी माता, इनकी सास तथा दीवान लखपत राय थे, ने प्रशासन कार्य चलाया। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में सिक्ख मिसलें विघटित अवस्था में थीं। रणजीत सिंह ने इस स्थिति का लाभ उठाया व शीघ्र ही शक्ति के बल पर मध्य पंजाब में एक राज्य स्थापित कर लिया। रणजीत सिंह ने 1799 ई. में लाहौर पर तथा 1805 में अमृतसर की भंगी मिसल पर अधिकार कर लिया। 1803 में अकालगढ़ पर कब्जा कर लिया। 1804 ई. गुजरात के साहिब सिंह पर हमला कर पराजित किया। 1808 ई. में रणजीत सिंह ने सतलज नदी पार करके फरीदकोट, मलेरकोटला तथा अम्बाला को जीत लिया, परन्तु 1809 ई. में अमृतसर की संधि के बाद सतलज नदी के पार के प्रदेशों पर अंग्रेजों का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। 1818 ई. में मुल्तान 1834 ई. में पेशावर पर कब्जा किया गया। 1839 ई. में रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. बलबन का राजत्व सिद्धान्त प्रसिद्ध रहा है। बलबन की मान्यता थी कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है।
2. बाबर ने अपनी की पुस्तक तुर्की भाषा में लिखी थी, जिसका नाम बाबरनामा या तुजूके बाबरी है। अब्दुर्रहीम खानखाना ने बाद में इसका फारसी में अनुवाद किया।
3. शेरशाह के सुधार एवं निर्माण प्रसिद्ध हैं। शेरशाह प्रशासन में अकबर का अग्रगामी एवं पथ प्रदर्शक माना जाता है। भूमि माप एवं लगान को व्यवस्थित कर गल्लाबख्शी या बंटाई, नश्क, मुक्ताई या कनकूत और नकदी या जब्ती प्रणाली प्रचलित की। उसने 4 बड़ी सड़कें एवं अनेक सरायों का निर्माण करवाया। उसकी सबसे

लम्बी सड़क बंगाल के सोनार गांव से लेकर पेशावर (वर्तमान पाकिस्तान) तक थी, जिसका अस्तित्व आज भी है। यह सड़क ग्रैड ट्रंक रोड के नाम से विख्यात है।

4. अकबर ने दार्शनिक एवं धर्मशास्त्रीय वाद–विवाद करने के लिए फतेहपुर सीकरी में 1575 ई. में इबादतखाना बनवाया। 1581 ई. में सभी धर्मों का सार संग्रह कर 'दीन–ए–इलाही' नामक धर्म का प्रवर्तन किया।

5. मुगल शासन प्रणाली भारतीय तथा विदेशी प्रणालियों का मिला–जुला रूप थी। यह भारतीय वातावरण में अरबी–फारसी प्रणाली थी।

6. 15वीं और 16वीं शताब्दी के धर्म–सुधार और भक्ति आन्दोलन ने इस सामाजिक एकता को और अधिक सुदृढ़ किया। दक्षिण में जन–साधारण आधारित इस धार्मिक आन्दोलन का नेतृत्व तुकाराम, रामदास, एकनाथ, वामन पंडित इत्यादि संतों और दार्शनिकों ने किया था। यह आंदोलन ऊँच–नीच, जाति व्यवस्था और कर्मकांड के विरुद्ध था, जिसने सभी के लिए 'भक्ति' द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया।

7. 1674 ई. में 'रायगढ़' के दुर्ग में शिवाजी ने स्वतंत्र शासक के रूप में अपना राज्याभिषेक कराया, इस अवसर पर उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि भी धारण की।

8. नानक ने ''मानुष की जात सबै एक '' तत्त्व का प्रचार करते हुए भारत भ्रमण किया। इनकी इस तरह की यात्राओं को उदासियाँ कहा जाता है। गुरू नानक देव की शिक्षाएँ – एक ईश्वर में विश्वास, नाम की महानता और उपासना, गुरू की महानता इत्यादि थी। उनकी शिक्षाओं में मानव को शुभ कर्म करने पर बल दिया गया।

9. तेगबहादुर द्वारा मुस्लिम धर्म स्वीकार न करने पर औरंगजेब ने उनका सिर कटवा दिया। उनके लिखा था कि ''सिर दिया पर सार (सिरड़) नहीं दिया''। दिल्ली में उनका स्मारक चाँदनी चौक में 'सीसगंज गुरूद्वारा' नाम से प्रसिद्ध है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. गुलाम वंश का अन्य नाम क्या है ?
2. रजिया सुल्तान ने याकूत को किस पद पर नियुक्त किया था ?
3. 'लोह एवं रक्त' की नीति को लागू करने वाला शासक कौन था ?
4. बाबरनामा का फारसी में अनुवाद किसने किया था ?
5. 'ग्रैड ट्रंक रोड' किस शासक ने बनवाई थी ?
6. पानीपत की दूसरी लड़ाई कब हुई थी ?
7. हेमू ने कौनसी उपाधि धारण की थी ?
8. विश्व प्रसिद्ध हल्दीघाटी युद्ध कब हुआ था ?
9. अकबर ने कौनसे धर्म का प्रवर्तन किया था ?
10. बहमनी साम्राज्य का संस्थापक कौन था ?
11. 'अकालतख्त' का निर्माण सिक्खों के कौनसे गुरू ने करवाया था ?
12. शिवाजी का राज्याभिषेक कहाँ हुआ था ?
13. हम्मीर चौहान कहाँ का शासक था ?
14. 'अमर सिंह का फाटक' कहाँ पर है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मुहम्मद तुगलक की पाँच योजनाओं के नाम लिखिए।
2. 'सिकन्दरी गज' के बारे में बताइये।
3. फरीद को शेर खाँ की उपाधि किसने एवं क्यों दी ?
4. विजय नगर साम्राज्य का परिचय दीजिए।
5. राव शेखा के बार में आप क्या जानते हैं ?
6. बन्दा बैरागी कौन था ?

निबंधात्मक प्रश्न –

1. दिल्ली सल्तनत के प्रशासन के बारे में बताइये।
2. सवाई जयसिंह क्षेत्र के योगदान को स्पष्ट करें।
3. 'हल्दीघाटी युद्ध' पर निबंध लिखिए।
4. मराठों के उदय में शिवाजी का योगदान बताइये।
5. गुरू नानक देव का परिचय देते हुए सिक्ख धर्म की प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।

अध्याय 3

अंग्रेजी साम्राज्य का प्रतिकार एवं संघर्ष

पश्चिमी देशों ने अपने आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने की दृष्टि से अलग–अलग देशों में अपने उपनिवेश बनाये और बाद में अपना साम्राज्य स्थापित किया। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की शुरुआत छल कपट अत्याचार व शोषण से हुई। भारत प्राचीन काल से ही एक समृद्धशाली देश रहा है। अतः विश्व के अन्य देशों के साथ ही अंग्रेजों की भारत पर सदैव निगाहें रही हैं। शीघ्र ही वे व्यापारी से शासक बन गए। अंग्रेजों के कारण भारत की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को आधारभूत क्षति पहुँची।

1757 ई. से 1857 ई तक स्वतंत्रता की चेतना

23 सितम्बर 1600 ई. को ब्रिटेन के प्रमुख व्यापारियों ने एक संयुक्त पूंजी उद्यम के रूप में ''दी गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेन्टस ऑफ लन्दन ट्रेडिंग इन टू दी ईस्ट इण्डीज" के नाम से ब्रिटिश इस्ट इण्डिया कम्पनी शुरू की। 31 दिसम्बर 1600 ई. को एलिजाबेथ प्रथम ने इस कम्पनी को पूर्व के साथ व्यापार करने का अधिकार पत्र दिया। 1612 ई. में सूरत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्थायी व्यापारिक कोठी स्थापित की। 1604 ई. में मद्रास (चेन्नई) में फोर्ट सेन्ट जार्ज किले का निर्माण किया। 1717 ई. में मुगल बादशाह फर्रूखशियर से एक फरमान प्राप्त कर कम्पनी ने 38 गांवों की जमींदारी प्राप्त कर ली। तीन हजार रूपये नजराने के बदले में कम्पनी के माल को सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया और चुंगी शुल्क मुक्ति के लिए अंग्रजों को 'दस्तक' (विशेष अनुमति पत्र) जारी करने का अधिकार दे दिया। कम्पनी ने अपना ध्यान बंगाल पर अधिक केन्द्रित किया।

चित्र 3.1 : प्लासी का युद्ध

1757 ई. से पूर्व अंग्रेजों ने अन्य यूरोपीय कम्पनियों को पराजित कर अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली। मुगलों से फरमान प्राप्त करने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बंगाल में हस्तक्षेप बढ़ गया। 10 अप्रैल 1756 ई. को बंगाल के नवाब अली वर्दी खां की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी छोटी पुत्री का पुत्र सिराजुद्दौला नवाब बना। जबकि पूर्णिया का गर्वनर शौकत जंग भी नवाब बनना चाहता था। अंग्रेजों ने अवसर का लाभ उठाकर नवाब के विरोधियों को संरक्षण देना प्रारम्भ कर दिया। आर्थिक मामलों को लेकर नवाब और अंग्रेजों के मध्य काफी मतभेद हो गये। जिसके परिणामस्वरूप 23 जून 1757 ई को प्लासी का युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेजो की विजय हुई और नवाब मारा गया। अंग्रेजों ने बंगाल का नवाब "मीर जाफर" को बना दिया, जिससे बंगाल में अंग्रेजों की सर्वोच्चता स्थापित हो गई।

1760 ई. में जब मीर जाफर अंग्रेजों की धनापूर्ति नहीं कर सका तो अंग्रजों ने मीर कासिम को बंगाल का नवाब बना दिया। नवाब बनने के बाद मीर कासिम ने बंगाल में प्रशासनिक पुनर्ग्रहण का प्रयास किया लेकिन भ्रष्टाचार व ब्रिटिश हस्तक्षेप के कारण उसे सफलता नहीं मिली। आर्थिक मामलों एवं विभिन्न सुविधाओं को लेकर मीर कासिम व अंग्रेजों के मध्य मतभेद बढ़ते गये। जिसके परिणामस्वरूप 22 अक्टूबर 1764 को बक्सर का युद्ध हुआ, जिसमें नवाब की पराजय हुई और अंग्रेजों की विजय हुई। यह युद्ध भारतीयों के लिए अधिक घातक सिद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार अंग्रेजों को प्राप्त हो गये। इससे भारत के उद्योगों और व्यापार को भी हानि पहुँची।

अंग्रेजों का मराठा व मैसूर से संघर्ष–

18 वीं शताब्दी में भारत में मराठा शक्ति एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी थी लेकिन 14 जनवरी 1761 के पानीपत के युद्ध में बाद मराठों की शक्ति कमजोर हो गई। अंग्रेजों को भारत पर अधिकार करने से रोकने वाली चुनौती मराठा ही थे। अब अंग्रेज मराठों को अपने अधीन करने का अवसर तलाश रहे थे। 1772 ई. पेशवा माधवराव की मृत्यु के बाद उसका भाई नारायण पेशवा बना लेकिन पूर्व पेशवा का चाचा रघुनाथ राव पेशवा बनना

चित्र 3.2

चाहता था। अंग्रेजों को अब मराठा राज्य में फूट डालने का अवसर मिल गया। अंग्रेजों और रघुनाथ राव के मध्य 6 मार्च, 1775 ई. को सूरत की संन्धि हुई, जिसमें अंग्रेज, रघुनाथ राव को पेशवा बनने में मदद करेंगें और पेशवा अंग्रेजों को बेसिन, सालसेट व सूरत की लगान का आधा भाग देगा। इस प्रकार रघुनाथ राव की महत्वाकांक्षा तथा बम्बई सरकार द्वारा उसके साथ की गई सन्धि ने मराठों और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष को अनिवार्य बना दिया।

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध :–

1775 ई. से 1782 ई. के मध्य अंग्रेजों और मराठों के मध्य संघर्ष चला। इस संघर्ष में ब्रिटिश सेना, संगठित मराठा सेना से परास्त हुई और 29 जनवरी 1799 ई ''बडगॉव'' की अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी, जिसमें अंग्रेजों द्वारा विजित प्रदेश मराठों को वापस लौटाने तथा रधुनाथ राव को पूना दरबार के हवाले करने तथा अंग्रेजों द्वारा 41000 रू युद्ध हर्जाने के रूप में देना तय हुआ।

द्वितीय अंग्रेज मराठा संघर्ष :–

यह संघर्ष 1802 से 1805 तक चला, इस संघर्ष का कारण लार्ड वेलेजली की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा तथा मराठा सरदारों का आपसी द्वेष रहा। इस संघर्ष में मराठा सरदारों ने अलग–अलग अंग्रेजों से युद्ध किया और पराजित हुए। दक्षिण भारत में भौंसले ने संघर्ष किया और 1803 ई. में अमर गॉव के युद्ध में पराजित होने पर 17 दिसम्बर 1803 ई. को अंग्रेजों से देवगॉव की सन्धि कर ली। लालवाडी के युद्ध में सिन्धिया पराजित हुआ और 30 दिसम्बर 1803 ई. में 'सुर्जी अर्जुन गॉव' की सन्धि हुई। होल्कर और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष अनिर्णित रहा लेकिन दोनों पक्षों के मध्य जनवरी 1806 ई. को 'राजघाट' की सन्धि हुई जिसके अनुसार होल्कर ने चम्बल नदी के उत्तरी क्षेत्र पर अपना अधिकार छोड दिया तथा राजपूताने में आन्तरिक हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया।

तृतीय अंग्रेज मराठा संघर्ष :–

भारत में अंग्रेजों की सर्वश्रेष्ठता बनाये रखने के लिए 13 जून 1817 को पेशवा के साथ तथा 5 नवम्बर 1817 ई. को सिंधिया को अंग्रेजों के साथ अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। इन अपमानजनक बन्धनों को तोड़ने के लिए मराठों ने संघर्ष आरम्भ कर दिया, लेकिन पेशवा की किर्की भोंसले की सीतवर्डी तथा होल्कर की महींदपुर स्थान पर पराजय हुई। 18 जून 1818 को मेल्काम ने पेशवा के साथ सन्धि की। जिसके अनुसार पेशवा पद समाप्त कर दिया तथा 8 लाख की पेंशन देकर बिठूर भेज दिया, जहॉ पर 1852 ई में मृत्यु हो गई। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति, 'फूट डालो राज करो' की नीति से मराठों को संघर्ष में पराजित कर दिया।

आंग्ल–मैसूर संघर्ष :–

1761 ई. में हैदर अली ने मैसूर के राजा नंदराज से सत्ता छीन ली और सर्वेसर्वा बन गया। 1776 ई. को मैसूर के राजा की मृत्यु के बाद अपने को शासक घोषित कर दिया। अंग्रेजों की साम्राज्यादी महत्वाकांक्षा में हैदर अली खटकने लगा। अतः अंग्रेजों ने मराठों और निजाम के साथ मिल कर हैदर अली के विरूद्ध संगठन बनाया लेकिन हैदर अली ने कूटनीति से मराठों को युद्ध में तटस्थ कर दिया और निजाम को प्रादेशिक लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया। 1767 में हैदर अली ने ब्रिटिश प्रभाव वाले क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। अन्त में अंग्रेज पराजित हुए, लाचार अंग्रेजों को हैदर अली के साथ 4 अप्रैल 1769 ई. को "मद्रास की सन्धि" करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश वापस लौटा दिये।

द्वितीय आंग्ल–मैसूर संघर्ष :–

अंग्रेज प्रथम संघर्ष की हार का बदला लेना चाहते थे, हैदर अली अंग्रेजों के गुंटूर पर अधिकार से नाराज था। अतः हैदर अली ने निजाम व मराठो के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध किया। जुलाई 1780 में युद्ध प्रारम्भ हो गया। हैदर अली को सफलता मिल रही थी, लेकिन 7 दिसम्बर 1782 को हैदर की मृत्यु हो गई तथा कार्यभार उसके पुत्र टीपू सुल्तान पर आ गया। टीपू ने एक वर्ष तक युद्ध जारी रखा, लेकिन दोनों पक्षों ने युद्ध से पेरशान होकर 11 मार्च 1784 ई. को मंगलौर की सन्धि कर ली और एक दूसरे के विजित प्रदेश वापस कर दिये। अंग्रेजों ने मैसूर के मामले में दखल नहीं देने का वचन दिया।

तृतीय अंग्रेज–मैसूर संघर्ष :–

तृतीय आंग्ल–मैसूर संघर्ष का कारण, अंग्रेज मैसूर का प्रभाव समाप्त करना चाहते थे दूसरी ओर टीपू मालाबार की सुरक्षा

हेतु कोचीन में स्थित डच दुर्ग क्रागनूर व आइकोट को खरीदना चाहता था। लेकिन अंग्रेज समर्पित, ट्रावनकोर के राजा ने इन्हें खरीद कर टीपू को नाराज कर दिया। अप्रैल 1790 ई. में टीपू ने ट्रावनकोर पर आक्रमण कर दिया। कार्नवालिस ने विशाल सेना के साथ मैसूर पर आक्रमण कर दिया। टीपू ने वीरतापूर्वक मुकाबला किया लेकिन अन्त में 23 फरवरी 1792 ई. को श्रीरंगपट्टनम की संधि करनी पड़ी। इस संधि से मैसूर का आधा भाग चला गया और युद्ध क्षति के रूप में तीन करोड़ की राशि अंग्रेजों को देनी पड़ी तथा अपने दो पुत्रों को बंधक के रूप में अंग्रेजों के पास रखना स्वीकार करना पड़ा।

चतुर्थ आंग्ल–मैसूर युद्ध :–

1798 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर बन लार्ड वेलेजली भारत आया। वेलेजली एक साम्राज्यवादी गर्वनर जनरल था। उसने निश्चय किया कि टीपू को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये अथवा उसे पूर्णतया अपने अधीन कर लिया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये वेलेजली ने सहायक संधि करने का सहारा लिया। टीपू सुल्तान ने सहायक संधि को अस्वीकार कर दिया। अप्रैल 1799 ई. में टीपू के विरूद्ध अभियान प्रारम्भ कर दिया। 4 मई, 1799 को श्रीरंगपट्टनम का दुर्ग जीत लिया तथा मैसूर की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। टीपू संघर्ष करता हुआ मारा गया।

अंग्रेजों का पंजाब के साथ संघर्ष :–

अफगानिस्तान के शासक ने रणजीत सिंह को पंजाब का गर्वनर बनाया। रणजीत सिंह सतलज नदी के पूर्व में स्थित प्रान्तों पर अधिकार करना चाहता था, जबकि इस क्षेत्र पर अंग्रेज अपना आधिपत्य चाहते थे। फरवरी 1809 ई. में अक्टर लोनी ने सतलज के पूर्वी प्रदेशों पर अंग्रेजी नियन्त्रण की घोषणा कर दी और कहा कि लाहौर की ओर से कोई आक्रमण हुआ तो उसे सैनिक बल से रोका जायेगा। महाराजा ने मात खाई और 25 अप्रैल 1809 ई. को रणजीत सिंह व अंग्रेजों के मध्य अमृतसर की सन्धि हुई। जिसमें सतलज नदी के पूर्वी तट के राज्यों पर अंग्रेजी नियन्त्रण स्वीकार कर लिया।

रणजीत सिंह के समय तक अंग्रेजों के साथ संबंध शान्तिपूर्ण बने रहे। 27 जून 1839 ई. को रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई तो सरदारों की महत्वंकाक्षायें व स्वार्थ के कारण दरबार में दलबन्दी प्रारम्भ हो गई। खड़क सिंह राजा बना, लेकिन वह कुशल प्रशासक नहीं था, जिससे दरबार में डोगरा बन्धुओं का हस्तक्षेप बढ़ गया। अंग्रेजों ने इस अराजकता का लाभ उठाया और ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी की दोनों के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रथम अंग्रेज सिक्ख संघर्ष :–

अंग्रेजों की स्रामाज्यवादी महत्वकांक्षा तथा अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति प्रथम अंग्रेज सिक्ख संघर्ष का कारण रही। प्रथम मुठभेड़ के बाद 13 दिसम्बर 1845 में लार्ड हार्डिंग ने सिक्खों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 10 फरवरी 1846 के सबराओं के युद्ध में सिक्खों की निर्णायक हार हुई। 13 फरवरी 1846 को अंग्रेजों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। 1 मार्च 1846 को लाहौर की सन्धि हुई जिसमें जालन्धर दोआब अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया तथा एक करोड़ पचास लाख की राशि युद्ध क्षति के रूप में सिक्खों को अंग्रेजों को देनी थी। सिक्ख सेना की संख्या सीमित कर दी गई। हार्डिंग पंजाब प्रशासन पर दलीप सिंह के वयस्क होने तक अधिकार रखना चाहता था अतः 26 दिसम्बर 1846 ई. को भैरोंवाल की एक पूरक सन्धि की जिसमें अंग्रेज पंजाब के एक भाग के स्वामी बन गये।

द्वितीय आंग्ल–सिक्ख संघर्ष व पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय :–

द्वितीय आंग्ल सिक्ख संघर्ष का कारण 1847–48 में अंग्रेजों द्वारा पंजाब में सारे ऐसे सुधार करना जो सिक्ख विरोधी थे, फौज से मुक्त किये गये सैनिकों का असन्तोष तथा रानी जिन्दा के अधिकारों का छिन जाना व उसकी बदला लेने की चाहत थी। रेजीडेन्ट का अत्यधिक आन्तरिक हस्तक्षेप व डलहोजी की पंजाब को अंग्रेजी शासन की चाहत ने द्वितीय आंग्ल–सिक्ख संघर्ष अनिवार्य कर दिया।

10 अक्टूबर 1848 ई. को गवर्नर जनरल डलहोजी ने सिक्खों के साथ अन्तिम युद्ध करने की घोषणा के साथ ही युद्ध प्रारम्भ हो गया और 13 मार्च 1849 को शेर सिंह, छतर सिंह, मूलराज आदि सिक्खों के समर्पण के साथ ही युद्ध समाप्त हो गया। डलहौजी ने 29 मार्च 1849 ई. को एक घोषणा द्वारा पंजाब को ब्रिटिश भारत में विलय कर लिया। इसी घोषणा से पंजाब के स्वतन्त्र राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया।

1857 का स्वतन्त्रता संघर्षः–

1857 ई. से पूर्व लगातार 100 वर्षों तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत के प्रान्तीय राज्यों, देशी रियासतों, किसानो, जनजातियों आदि का प्रतिरोध सहन करना पड़ा। लेकिन 1857 ई. में अंग्रेजों को पहली बार भारतीयों के संगठित विरोध का सामना करना पडा। लेकिन अंग्रेजों ने कूटनीति एवं आपसी फूट का लाभ उठाकर इस प्रतिरोध को विफल कर दिया, परन्तु उनको अपनी नीति में परिवर्तन के लिए मजबूर होना पड़ा।

स्वतंत्रता संघर्ष का स्वरूप :–

इस प्रथम स्वाधीनता संघर्ष के स्वरूप के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं, जहाँ अंग्रेजी और यूरोपीय इतिहासकार इसे 'सिपाही विद्रोह' व सामन्ती प्रतिक्रिया अथवा मुस्लिम षडयंत्र का परिणाम बताते हैं, वहीं भारतीय इतिहासकार व विद्वानों का मानना है कि यह सैनिक असन्तोष से प्रारम्भ होकर, शीघ्र ही इस संघर्ष ने पहले जन विद्रोह के रूप में व्यापकता प्राप्त की। बाद में इस संघर्ष ने राष्ट्रीय विद्रोह व स्वतन्त्रता संग्राम का रूप ले लिया। सुरेन्द्र नाथ सेन ने लिखा है कि ''यह युद्ध धर्म के नाम पर प्रारम्भ हुआ था और स्वतन्त्रता संग्राम में जाकर समाप्त हुआ। डॉ. विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक (भारत का स्वातंत्र्य समर) वार ऑफ इण्डियन इण्डिपेन्डेस'' में इस युद्ध को भारत का स्वतन्त्रता संग्राम

बताया।

स्वतन्त्रता संघर्ष के कारण :–

01. अंग्रेजों की आर्थिक नीति,

02. लार्ड डलहौजी का हड़प सिद्वान्त

03. अंग्रेजों की साम्राज्य विस्तार की नीति

04. सामाजिक, धार्मिक, सैनिक कारण।

स्वतन्त्रता संघर्ष का प्रारम्भ एवं प्रसार :– सैनिकों के चर्बी वाले कारतूसों के प्रयोग से मना करने पर अनुशासनहीनता का अपराध लगा कर उनको दण्ड दिया गया। 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर की छावनी में सैनिक मंगल पाण्डे ने विद्रोह कर एक अधिकारी की हत्या करा दी। ब्रिटिश अधिकारियों ने 34 वीं एन. आई. रजिमेन्ट को तोड़ दिया और भारतीय सैनिकों को दण्ड दिया गया। मई 1857 ई. में छावनी में 85 सैनिकों ने चर्बी युक्त कारतूसों को प्रयोग करने से मना करने पर सैनिक न्यायालय ने दीर्धकालीन कारावास का दण्ड दिया। 10 मई को सैनिकों ने खुला विद्रोह कर दिया और अपने अधिकारियों की गोली मार कर हत्या कर दी। अपने सैनिक साथियों को मुक्त करवाकर वे लोग दिल्ली की ओर चल पड़े। सैनिकों ने 12 मई को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह द्वितीय को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। दिल्ली हाथ से निकल जाना अंग्रेजों के लिए एक भारी क्षति थी। क्रान्ति शीघ्र ही लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, बनारस, बिहार के कुछ भाग, झांसी और अन्य क्षेत्रों में भी फैल गई।

अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार करने के लिए पंजाब से सेनाएँ बुलाई। भारतीय सैनिकों ने घोर युद्व किया लेकिन अन्त में सितम्बर 1857 ई. में अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। इस युद्ध में अंग्रेज अधिकारी जॉन निकलसन' मारा गया। सम्राट को बन्दी बना लिया गया। दिल्ली के निवासियों से प्रतिशोध लिया गया। लेफ्टिनेन्ट हडसन ने सम्राट के दो पुत्रों व एक पोते की गोली मार कर हत्या कर दी।

4 जून 1857 ई. को लखनऊ में क्रान्ति हो गई, भारतीय सैनिकों ने रेजीडेन्सी को घेर लिया जिसमें ब्रिटिश रेजिडेन्ट हेनरी लारेन्स की मृत्यु हो गई। हेवलॉक और आउटड्रम ने लखनऊ को पुनः जीतने का प्रयास किया लेकिन असफल रहे। नवम्बर 1857 ई. में मुख्य सेनापति सर कॉलिन कैम्पबेल ने गोरखा रेजीमेन्ट की सहायता से नगर में प्रवेश किया। मार्च 1858 ई. को नगर पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया।

5 जून 1857 ई. को क्रन्तिकारियों ने कानपुर पर अधिकार कर नाना साहिब को पेशवा घोषित कर दिया। जनरल सर ह्यू व्हीलर जो छावनी कमाण्डर थे, उन्होनें 27 जून को आत्म–समर्पण कर दिया। पेशवा नाना साहिब का साथ तात्या टोपे ने दिया। 6 दिसम्बर 1857 को सर कैम्पबेल ने कानपुर पर पुनः अधिकार कर लिया। तात्या टोपे भाग निकले और झांसी चले गये।

जून 1857 में झांसी में क्रान्ति हो गई। रानी लक्ष्मी बाई को रियासत का शासक घोषित कर दिया। सर ह्यूरोज ने झांसी पर आक्रमण करके अप्रैल 1858 को पुनः उस पर अधिकार कर लिया। झांसी पर अधिकार हो जाने पर रानी तथा तात्यां टोपे ने ग्वालियर की ओर अभियान किया, जहाँ भारतीय सैनिकों ने उनका स्वागत किया। परन्तु सिन्धिया ने राजभक्त रहने का निश्चय किया और आगरा में शरण ली। ग्वालियर पर जून 1858 ई में अंग्रेजों ने पुनः अधिकार कर लिया। 17 जून 1858 को रानी लक्ष्मी बाई ब्रिटिश सेना से संघर्ष करती हुई वीरगति को प्राप्त हो गई। तात्यां टोपे फिर बच निकले परन्तु अप्रैल 1859 ई. में उन्हें सिन्धिया के एक सामन्त ने पकड़ लिया और अंग्रेजों के सुपूर्द कर दिया और अंग्रेजों ने उसे फाँसी दे दी।

बिहार में इस क्रान्ति का नेतृत्व जगदीशपुर के जमीदार 80 वर्षीय कुँवर सिंह ने किया। कुँवर सिंह ने अंग्रेज सेनापति मिलमेल, कर्नल डेक्स, मार्क और मेजर डालस को धूल चटाई। अप्रैल 1858 में पुनः अपनी रियासत पर अधिकार कर लिया। 26 अप्रैल 1858 ई. को कुँवर सिंह ने अंग्रेजों से युद्ध किया लेकिन सफलता नहीं मिली। बरेली में बहादुर खान ने क्रान्ति में भाग लिया। बनारस में भी क्रान्ति हुई लेकिन कर्नल नील ने उसे दबा दिया।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में सैनिक क्रान्तिकारियों की संख्या कम थी, फिर भी इस महान संघर्ष में दक्षिण भारत के भी अनेक क्रान्तिकारी शहीद हुए, सजाएँ भुगतीं एवं बन्दी बनाये गये। 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम के दक्षिणी भारत के प्रमुख नेतृत्व करने वालों में रंग बापू जी गुप्ते (सतारा), सोना जी पण्डित, रंगाराव पांगें व मौलवी सैयद अलाउद्दीन (हैदराबाद) भीमराव व मुंडर्गी छोटा सिंह (कर्नाटक), अण्णाजी फड़नवीस (कोल्हापुर), गुलामगौस व सुल्तान बख्श (मद्रास), अरणागिरी व कृष्णा (चिगलफुट), मुलगाबल स्वामी (कोयम्बटूर), मुल्ला सनी, विजय कुदारत (केरल), आदि विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार 1857 का स्वतन्त्रता संघर्ष सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त रहा था तथा इस संघर्ष में सैनिकों के साथ सभी क्षेत्र, भाषा, धर्म, एवं जाति के लोगों तथा कृषकों व जमींदारों ने भाग लिया।

जनजातीय आन्दोलन

23 जून 1757 ई. को प्लासी के युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। 1764 ई. के बक्सर युद्ध के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारत को अंग्रेजी उपनिवेश में बदलने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। इस उपनिवेशिकरण की प्रक्रिया ने ही जनविद्रोहों को जन्म दिया, जिनमें जनजातीय आन्दोलन भी हैं। जनजातीय आन्दोलनों का कारण जनजातीय लोगों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता के खो जाने, स्वशासन में विदेशी हस्तक्षेप, प्रशासनिक परिवर्तनों का होना, अत्यधिक करों की माँग, अर्थव्यवस्था का भंग होना आदि माना जाता है।

बंगाल तथा पूर्वी भारत में जनजातीय विद्रोह :—

1. सन्यासी विद्रोह :— बंगाल पर अंग्रेजी राज्य स्थापित होने के बाद जब 1769–70 ई. में भीषण अकाल पडा, उधर कम्पनी के पदाधिकारियों ने कर भी कठोरता के साथ वसूले। सन्यासी कृषि करने के साथ–साथ धार्मिक यात्राएँ भी नियमित करते थे। तीर्थ स्थानों पर आने जाने पर प्रतिबन्ध लगाने से सन्यासी लोग नाराज हो गये। इन सन्यासियों की अन्याय के विरूद्ध लडने की परम्परा भी रही थी और उन्होंने जनता के साथ मिलकर कम्पनी की कोठियों तथा कोषों पर आक्रमण कर लूट लिए। ये लोग कम्पनी के सैनिकों के विरूद्ध बहुत वीरता से लड़े, लेकिन वारेन हेस्टिंग ने एक लम्बे अभियान के बाद इस विद्रोह को दबा दिया, जिसका उल्लेख बंकिम चन्द्र चटर्जी के उपन्यास 'आनन्द मठ' में मिलता है।

2. कोल विद्रोह :— अंग्रेजी प्रशासनिक जटिलताओं, कठोर भूमिकर व्यवस्था तथा स्थानीय शासक वर्गों के उपेक्षापूर्ण व्यवहार ने जिस शोषण को जन्म दिया था, उसके खिलाफ कोल जनजाति ने विद्रोह किया। यह विद्रोह तब अधिक बढ गया, जब 1831 ई. में

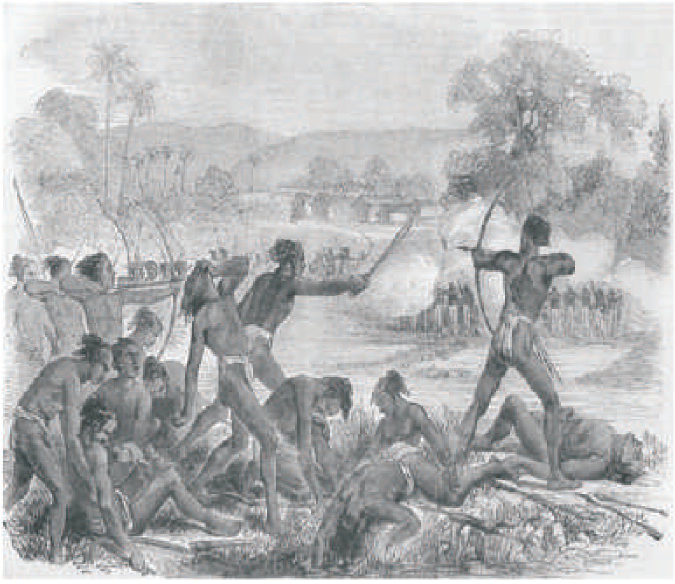

चित्र 3.4

उनकी भूमि उनके मुखिया मुण्डों से छीनकर बाहरी लोगों को दे दी गई । इस विद्रोह में हिंसा व्यापक स्तर पर हुई। यह विद्रोह रांची, सिंहभूम हजारीबाग, पलामाऊ तथा मानभूमि के पश्चिमी क्षेत्रों में फैल गया। एक दीर्घकालीन तथा विस्तृत सैन्य अभियान के पश्चात् ही यहां शान्ति स्थापित हो सकी। कलकत्ता स्थित कौंसिल के अध्यक्ष मेटकॉफ ने यह स्वीकार किया कि इस विद्रोह में अंग्रेज विरोधी भावना बहुत स्पष्ट थी।

3. संथाल विद्रोह :— 1855–56 ई. के बीच शुरू होने वाला संथाल विद्रोह अंग्रेजी शासन के खिलाफ महत्वपूर्ण जन विद्रोह था। इसमें नेतृत्व और संगठन को एक सुव्यवस्थित स्तर पर देखा जा सकता है। यह विद्रोह वीरभूमि, बाकुरा, सिंहभूमि, हजारी बाग, भागलपुर और मुंगेर के इलाकों में फैला हुआ था। इस विद्रोह का कारण संथाल लोगों पर भूमिकर अधिकारियों द्वारा दुर्व्यवहार किया जाना, पुलिस का दमन तथा जमीदारों तथा साहूकरों द्वारा जबरदस्ती वूसली किया जाना था। इस विद्रोह का नेतृत्व दो भाई सिंधु और कान्हू द्वारा किया गया और इन्होंने कम्पनी के शासन का अन्त करने की घोषणा कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। विस्तृत सैन्य कार्यवाही के पश्चात ही 1856 ई. में स्थिति नियन्त्रण में आई तथा सरकार को स्वतन्त्र पृथक संथाल परगना बनाना पड़ा।

4. भील विद्रोह :—

भील जनजाति पश्चिमी तट के खानदेश नामक इलाके में रहती थी। 1812–19 तक इन लोगों ने अपने नये स्वामी अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। कम्पनी अधिकारियों का मानना था कि इस विद्रोह को पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा उसके प्रतिनिधि त्रिक्बकजी दांगलिया ने प्रोत्साहित किया था। वास्तविक कारण कृषि संबंधी कष्ट तथा नई सरकार से भय था। अंग्रेजी सेना की अनेक टुकड़ियाँ इसको दबाने में लगी थी। उन्होंने 1825 ई. में सेवरम के नेतृत्व में पुनः विद्रोह किया तथा 1831 ई. तथा 1846 ई. में पुनः विद्रोह किये गये।

5. रमोसी विद्रोह :—

पश्चिमी घाट में रहने वाली एक जनजाति रमोसी थी। वे अंग्रेजी प्रशासन पद्धति तथा अंग्रेजी प्रशासन से बहुत अप्रसन्न थे। 1822 ई. में उनके सरदार चित्तर सिंह ने विद्रोह कर दिया तथा सतारा के आसपास के प्रदेश लूट लिए। 1825–26 ई. में पुनः विद्रोह हुए। अधिक सैन्य बल से ही अंग्रेज इन विद्रोह को दबाने में सफल हुए।

क्रान्तिकारी संगठनों का स्वतन्त्रता संघर्ष में योगदान

भारत के लोगों ने कभी हृदय से अंग्रेजी दासता को स्वीकार नहीं किया। 1757 ई. से भारत के स्वतंत्र होने तक संघर्ष करते रहें। 1857 ई. में विशाल स्तर पर होने वाला धमाका अंग्रेजी सत्ता को हिलाने वाला सिद्ध हुआ। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 20 वीं शताब्दी में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक क्रान्तिकारी बलिदानों ने खून से आजादी का इतिहास लिखा।

क्रान्ति कारी आन्दोलन के उत्थान के मुख्यतः वही कारण थे जिनसे आन्दोलन में उग्रपंथ का उदय हुआ। 1857 ई. में कड़े संघर्ष के पश्चात् अंग्रेज सत्ता पुनः स्थापित कर पाये। लेकिन लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन करने के लिए भारतीयों को बाध्य किया। 1905 ई. के बंग–भंग की चोट से प्रत्येक स्वाभिमानी भारतीय भड़क उठा। सरकार का दमन और साथ में जनता को कुशल नेतृत्व देने में नेताओं की असफलता के कारण उपजी कुंठा ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया।

क्रान्तिकारी यह विश्वास करते थे कि राष्ट्रीय जीवन में जो भी उपयुक्त तत्त्व हैं, जैसे कि धार्मिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रताएँ, नैतिक मूल्य तथा भारतीय संस्कृति, को विदेशी शासन समाप्त कर देगा। अतः सभी क्रान्तिकारियों का एक ही उद्देश्य था मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराना।

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन :–

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी गतिविधि का प्रारम्भ 1876 में वासुदेव बलवन्त फड़के नामक सरकारी कर्मचारी ने किया। उन्होंनें सन 1876 ई. में महाराष्ट्र में पड़ने वाले भयंकर अकाल से उत्पन्न प्रजा के कष्टों को दूर करने के लिए अंग्रेजी सरकार की नौकरी छोड़ दी और स्थान–स्थान पर भाषण देकर अंग्रेज सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए महाराष्ट्र की जनता को प्रोत्साहित किया। फड़के के भाषणों से उत्तेजना फैलने लगी और 1879 ई. में फड़के को गिरफ्तार कर के अदन (अरब देश) की जेल में भेज दिया, जहां 1889 में स्वर्गवास हो गया।

चापेकर बन्धुओं द्वारा रैण्ड की हत्या :–

पुणे (महाराष्ट्र) के चापेकर बन्धुओं– दामोदर हरि चापेकर, बालकृष्ण हरि चापेकर तथा बासुदेव हरि चापेकर ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को दिशा दी। 1893 ई. में "हिन्दु धर्म संरक्षण सभा" बनाई। इसके अन्तर्गत शिवाजी उत्सव व गणेश उत्सव मनाने प्रारम्भ किये और लोगों के अन्दर देशभक्ति और उत्साह की भावना उत्पन्न की। 1897 में पुणे में प्लेग रोग महामारी के रूप में फैला, पूना के प्लेग कमिश्नर रैंड व लेटिसेन्ट एयर्स्ट प्लेग पीडितों की मदद की बजाय आतंक ज्यादा फैला रहे थे। ये दोनों अधिकारी बदनाम, कठोर व कुचक्र रचने वाले थे। सम्पूर्ण पूना नगर इनके अत्याचारों से त्रस्त था अतः चापेकर बन्धुओं ने दोनों की 22 जून 1897 को हत्या की थी। चापेकर बन्धुओं को गिरफ्तार कर लिया गया और फांसी की सजा दी गई।

श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा लन्दन में इण्डिया हाऊस की स्थापना :–

श्यामजी कृष्ण वर्मा पश्चिमी भारत के काठियावाड़ प्रदेश के रहने वाले थे। उन्होंने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की और बैरिस्टर बन गये। भारत लौटने पर अंग्रेज पोलिटिकल रेजिडेंटो के आचरण से दुःखी होकर भारत को स्वतन्त्र कराने का दृढ निश्चय किया और अपना कार्य क्षेत्र लन्दन नगर को बनाया। देश से बाहर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये क्रान्तिकारी संगठन स्थापित करने की पहल श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ही की। 1905 ई में भारत स्वशासन समिति का गठन किया जिसे इण्डिया हाउस की संज्ञा दी जाती है। इन्होंने एक मासिक पत्रिका "इण्डिया सोशलिज्म" भी प्रारम्भ की। इन्होंने विदेश आने वाले भारतीयों के लिए एक–एक हजार की 6 फैलोशिप भी प्रारम्भ की। शीघ्र ही "इण्डिया हाउस" लन्दन में रहने वाले भारतीयों के लिए आन्दोलन करने का एक केन्द्र बन गया। वी0डी0 सावरकर, लाला हरदयाल और मदन लाल धींगरा जैसे क्रान्तिकारी इसके सदस्य बन गये। श्यामजी वर्मा की गतिविधियों को देख कर अंग्रेज सरकार ने उनके विरूद्ध कार्यवाही शुरू कर दी। वे भारत छोड़ कर पेरिस चले गये और वहां से क्रान्तिकारी गतिविधियों को जारी रखा।

विनायक दामोदर सावरकर :–

वीर सावरकर महान क्रान्तिकारी, महान देश भक्त और महान संगठनवादी थे। उन्होंने आजीवन देश की स्वतन्त्रता के लिए जो तप और त्याग किया उसकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती है। सावरकर को जनता ने वीर की उपाधि से विभूषित किया अर्थात् वे वीर सावरकर कहे जाते थे। वीर सावरकर का जन्म 28 मई 1883 ई. को भागुर गॉव (महाराष्ट्र) में हुआ। 1901 में मैट्रिक पास कर

चित्र 3.6 : विनायक दामोदर सावरकर

फर्ग्यूसन कॉलेज में दाखिला लिया जहां वे लोकमान्य तिलक के सम्पर्क में आये। बंगाल विभाजन के समय उन्होंने अपने साथियों के साथ "मित्र मेला" नामक संगठन बनाकर विदेशी कपडों की होली जलाई। जिस कारण उन्हें कॉलेज से निष्कासित कर दिया। सावरकर एकमात्र ऐसे क्रान्तिकारी थे जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने एक जन्म की नहीं दो जन्मों की आजीवन कारावास की सजा दी थी। उनकी पुस्तक (द इण्डियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस) प्रकाशन से पूर्व ही ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली थी। यह पुस्तक गुप्त रूप से विभिन्न शीर्षकों के नाम से भारत पहुँची थी। उन्होंने 1906 ई. में "अभिनव भारत" की स्थापना की। सावरकर पहले व्यक्ति थे जिन्होंनें 1857 के संघर्ष को गदर न कहकर भारत का प्रथम स्वतन्त्रता का युद्ध बताया। सावरकर का लम्बा समय अण्डमान की सेलूलर जेल में बीता। 1924 ई. में स्वास्थ्य खराब होने के बाद रत्नागिरी में नजर बन्द रखा गया। 1937 में जेल से मुक्त

कर दिया गया। उन्होंने भारत के विभाजन को रोकने के भी अथक प्रयास किये।

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन :—

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात श्री पी0 मिश्रा ने एक क्रान्तिकारी संगठन ''अनुशीलन समिति'' का गठन कर किया। बंगाल में राजनैतिक जागृति बंगाल विभाजन के बाद आई। अब आन्दोलन का उद्देश्य विभाजन को रद्द करवाना ही नहीं अतिपु स्वराज्य की प्राप्ति बन गया। 1905 ई में वारिन्द्र कुमार घोष ने '' भवानी मन्दिर'' नामक पुस्तक लिखकर क्रांतिकारी कार्यों को संगठित करने की विस्तृत जानकारी दी थी। 'युगान्तर' और 'संध्या' नाम की पत्रिकाओं में भी अंग्रेज विरोधी विचार प्रकाशित किये जाने लगे। एक अन्य पुस्तक ''मुक्ति कौन पाथे'' (मुक्ति किस मार्ग से) में सैनिकों से भारतीय क्रान्तिकारियों को हथियार देने का आग्रह किया।

किसान आन्दोलन

प्राचीन कृषि व्यवस्था को अंग्रेजों द्वारा बनाई गई नवीन प्रशासनिक व्यवस्था व कृषि नीतियों द्वारा धीरे–धीरे तोड़ा जा रहा था। अंग्रेजों की इस नई व्यवस्था ने नये प्रकार के भूमिपति उत्पन्न कर दिये जिससे ग्रामीण भारत में एक नया समाज उभर कर आया। सरकारी कर अत्यधिकता तथा जमीदारों द्वारा कर का अत्यधिक भाग लेने के कारण किसान साहूकारों तथा व्यापारियों के चंगुल में फंसते चले गये। अंग्रेजों द्वारा बनाये गये इस नये भूमिपति वर्ग व परजीवी बिचौलिये, लोभी व भ्रष्ट साहूकारों ने मिलकर किसानों को अधिकाधिक गरीब बना दिया। 19 वीं शताब्दी तक किसान इस स्थिति में आ गये कि वह अंग्रेजी शासन, स्थानीय शोषणकारियों तथा पूँजीपतियों से निबट कर सामन्तशाही बन्धनों को तोड़ना अथवा ढीला करना चाहते थे।

किसान आन्दोलन के कारणः—

1. अंग्रेज सरकार की प्रशासनिक भू कर नीतियाँ।
2. बार–बार लम्बे काल तक अकाल पड़ना।
3. किसानों से जमीदारों, सामन्तों द्वारा अत्यधिक कर वसूलना।
4. व्यापारियों, साहूकारों द्वारा चंगुल में फंसाकर झूठे दस्तावेज तैयार करना।

प्रमुख किसान आन्दोलन :—

1. बंगाल में नील उगाने वालो किसानों का विद्रोह :—यह विद्रोह अंग्रेज भूपतियों के विरूद्ध किया गया था। इस विद्रोह में किसानों का साथ जमीदारों, साहूकारों, धनी किसानों व सभी ग्रामीण वर्ग ने दिया। 19 वी शताब्दी में कुछ कम्पनी के अवकाश प्राप्त यूरोपीय अधिकारियों ने बंगाल तथा बिहार के जमीदारों से भूमि प्राप्त कर नील की खेती करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने किसानों से ऐसी शर्तों पर नील की खेती करने को बाध्य किया जो किसानों के लिए लाभकारी नहीं थी। अप्रैल 1860 ई. में बारासात उपविभाग तथा पावना और नादिया जिलों के समस्त किसानों ने हड़ताल कर दी और नील बोने से इनकार कर दिया। यह हड़ताल बंगाल के अनेक क्षेत्रों में फैल गई। सरकार को व्यापक असंतोष से बचने के लिए 1860 ई. में एक नील आयोग नियुक्त करना पडा।

2. 1875 ई. दक्षिण के विद्रोह :— दक्षिण के विद्रोह का कारण अत्यधिक भूमि कर, कपास के भाव कम हो जाना मराठा किसानों से अत्यधिक कर लिया जाना। मारवाड़ी और गुजराती साहूकारों द्वारा लालच के कारण लेखों में हेरा फेरी करने तथा अनपढ किसानों से बिना जानकारी के हस्ताक्षर करा लेते, जिससे दीवानी न्यायालयों में फैसले इन साहूकारो के पक्ष में जाने से किसान बेदखल हो जाते थे। 1875 ई. में किसानों ने पूना जिले के साहूकरों के मकानों तथा दुकानों पर आक्रमण कर दिये और जिन लेख पत्रों पर साहूकरों ने किसानों के हस्ताक्षर करा रखे थे उन्हें जला दिया गया। बाद में यह विद्रोह अहमदनगर तक फैल गया तथा पुलिस और सेना बुला कर ही यह विद्रोह दबाया जा सका। सरकार ने उपद्रवों के कारण जानने के लिए दक्कन उपद्रव आयोग नियुक्त किया तथा 1879 ई. में कृषक राहत अधिनियम पारित किया। जिसमें किसानों द्वारा ऋण न लौटाने पर गिरफ्तार अथवा जेल में बन्द नहीं किया जा सकता था।

3. पंजाब में किसान आन्दोलनः— पंजाब का आम किसान ऋणग्रस्त था और उसकी भूमि पर गैर किसान वर्ग का कब्जा हो गया था। इस भूमि हस्तान्तरण को रोकने के लिए सरकार पंजाब भूमि अन्याक्रमण अधिनियम (Panjab land Alienation Act 1900) लेकर आई।

4. चम्पारण किसान आन्दोलनः— उत्तर बिहार के चम्पारन जिले में यूरोपीयन नील के उत्पादक बिहारी किसानों पर अत्याचार करते थे। इसका विरोध करने के लिए गांधीजी ने बाबू राजेन्द्र प्रसाद की सहायता से किसानों की वास्तविक स्थिति की जॉच की। किसानों को अहिंसात्मक आन्दोलन करने के लिए कहा, लेकिन बाद में जून 1917 में एक जॉच समिति बनाई। जिसकी रिपोर्ट पर चम्पारन कृषि अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा नील किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराना बन्द कर दिया गया।

5. खेड़ा किसान आन्दोलनः— यह आन्दोलन बम्बई सरकार के विरूद्ध था। 1818 ई. की बसन्त ऋतु में फसलें नष्ट हो गईं लेकिन फिर भी बम्बई सरकार भूमि कर मांग रही थी, जबकि भूमि कर नियमों में यह स्पष्ट था कि फसल साधारण से 25 प्रतिशत से कम हो तो भूमिकर में पूर्णतया छूट मिलेगी, सरकार छूट देने को तैयार नहीं थी। गाँधीजी ने कृषकों को संगठित कर सत्याग्रह किया। अन्त में सरकार को गाँधीजी की बात स्वीकार करनी पड़ी।

6. अन्य संगठित प्रयासः— अखिल भारतीय स्तर पर किसान आन्दोलन चलाने के लिए 11 अप्रैल 1936 को लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन किया। किसान सभा ने आन्ध्र प्रदेश में जमीदारों के खिलाफ भूमि व्यवस्था विरोधी आन्दोलन किया। तथा 1936 में बिहार में बकाश्त (स्वयंजोती) हुई भूमि के विरूद्ध आन्दोलन किया। 18 अक्टूबर 1937 को किसान सभाओं ने सत्याग्रहियों पर हुए अत्याचार के विरूद्ध कृषक दिवस मनाया।

राजनैतिक आन्दोलन 1857–1919

1857 के स्वतन्त्रता संघर्ष की असफलता के बाद स्वतन्त्रता संधर्ष का नेतृत्व भारत के सभी भागों में भारत के आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने वाले भूपतियों और सम्पन्न वर्ग के हाथों में आ गया था। ये वर्ग अपनी मांगों के लिए संसद को स्मरण पत्र, प्रार्थना पत्र देते थे, साथ ही देश के लिए पढे लिखे लोगों को संगठित करने, अंग्रेजों द्वारा वर्तमान काल में कर रहे शोषण की जानकारी देकर जागृत कर रहे थे। इस काल के प्रारम्भिक नेतृत्व करने वाले लोगों को इग्लैण्ड के उदारवादी लोगों पर विश्वास था। ये लोग इंग्लेण्ड के उदारवादियों को भारत की वस्तुस्थिति भारतीयों की आंकाक्षाओं तथा भारत में संवैधानिक और प्रशासनिक सुधारों के लिए तैयार करना चाहते थे, साथ ही अंग्रेजो द्वारा किये जाने वाले शोषण और अत्याचारों की जानकारी अधिकाधिक लोगों को देकर आन्दोलन का विस्तार करना तथा देश के सभी क्षेत्रों, वर्गों तथा धर्मों को मानने वाले लोगो को संगठित करना चाहते थे।

1858 ई. के बाद राजनैतिक चेतना का प्रचारः–

भारतीयों की धीरे–धीरे राजनैतिक आकांक्षाये बढने लगी। सिविल सर्विस में स्थान ही नहीं नियंत्रण करने की आकांक्षा की जाने लगी। अब भारत में जनता के द्वारा चुनी हुई और उसके प्रति उतरदायी सरकार की मांग की जाने लगी। 1868 में बंगाल के प्रमुख अखबार हिन्दू पेट्रियट के सम्पादक क्रिस्टो दास पाल ने ऐसी मांग की। 1874 ई. में उन्होंने भारत के लिए स्वराज्य शीर्षक से लिखे लेख में भारतीयों द्वारा भारतीयों के लिए संवैधानिक सरकार के प्रारम्भ की बात की थी।

उस समय जो राजनैतिक संगठन भारत में थे वे इस प्रकार की प्रगतिशील माँग और उसके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके लिए बंगाल के कुछ विद्वानों, चिन्तको ने 1875 में इण्डियन लीग की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारतीयों में राष्ट्रवाद का भाव जागृत करने तथा राजनैतिक चेतना जागृत करना था। सार्वजनिक चेतना के द्वारा प्रारम्भ होने वाला यह पहला राजनैतिक संगठन था।

इण्डियन एसोसियेशनः–

इस संस्था की स्थापना के अगले वर्ष 1876 ई. में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में कलकत्ता के अल्बर्ट हाल में लगभग 800 प्रमुख लोगों ने भाग लिया, जिसमें यह तय हुआ कि संगठन समान राजनैतिक विचार रखने वाले लोगों को एक मंच पर लाएगा व सामान्य जनता को संगठित करेगा।

इण्डियन नेशनल कांग्रेसः–

1858 ई. के बाद भारत में चल रहे राजनैतिक विकास का ही परिणाम इण्डियन नेशनल कांग्रेस था, जिसकी स्थापना एक अंग्रेज भारतीय सिविल सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी एलेन ओक्टेवियन ह्यूम (Allen Octavion Hume) ने की थी। इसकी स्थापना के पीछे ब्रिटिश सरकार की सोच थी कि एक ऐसा संगठन बनाया जाये जिससे भारतीयो के मन में क्या है इसकी जानकारी ब्रिटिश सरकार को मिलती रहे तथा इसके सम्मेलनों में राजनैतिक नेताओं के मन की भड़ास निकल जायेगी तथा उन्हें अंग्रेजी शासन को हटाने के सशक्त प्रयास करने से भी रोका जा सकेगा। 28 दिसम्बर 1885 ई. को व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत कालेज में प्रथम अधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अधिवेशन में कांग्रेस के चार उद्देश्य बताये गये–

1. राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रयत्न में लगे लोगों को आपस में परिचित होने का अवसर देना।
2. आने वाले वर्षों के कार्यक्रम पर विचार करना।
3. ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति पूरी निष्ठा और भक्ति रखते हुए इंग्लैण्ड की संसद द्वारा तय किये गये सिद्धान्तों के विरूद्ध किये जाने वाले भारत सरकार के कार्यों का विरोध।
4. अप्रत्यक्ष रूप से यह संगठन भारतीय संसद का रूप ग्रहण करेगा तथा इस बात का उचित जवाब देगा कि अंग्रेजों की यह सोच कि भारत के चुने हुए प्रतिनिधि शासन व्यवस्था करने की योग्यता नहीं रखते हैं। कांग्रेस के काल को दो चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण 1885–90 ई. तक जिसे उदारवादी राजनीति अथवा राजनीतिक भिक्षावृति का युग कहा गया है। दूसरा चरण 1905 से 1919 का काल जिसे अतिवादियों अथवा अतिवादी राजनीति का काल कहा गया है।

कांग्रेस के प्रथम चरण के उदारवादी नेता दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, दीनशा वाचा, व्योमेश और सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी कांग्रेस की राजनीति पर छाये हुए थे। ये लोग उदारवादी तथा परिमित राजनीति में विश्वास करते थे। ये लोग अपनी राजनीति की व्याख्या "उदारवाद और संयम" (Liberalism and moderation) के समन्वय से करते थे। ये लोग भारतीयों के लिए धर्म और जाति के पक्षपात का अभाव मानव में समानता, कानून के सामने बराबरी, नागरिक स्वतन्त्रताओं का प्रसार और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की इच्छा करते थे। इस काल में कांग्रेस पर समृद्धिशाली, मध्यवर्गीय, बुद्धिजीवियों का जिनमें वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, पत्रकार और सहित्यक व्यक्ति सम्मिलित थे, का अधिकार था। इस काल में कांग्रेस में आने वाले प्रतिनिधि बड़े–बड़े नगरों से आते थे और इनका जनसाधारण से कोई सम्पर्क नहीं था। उदारवादी अंग्रेजी साम्राज्य के बने रहने अपितु उसको सुदृढ करने के पक्ष में थे। उन्हें डर था कि अंग्रेजों के जाने पर अव्यवस्था फैल जायेगी। अंग्रेजी राज्य शान्ति और व्यवस्था का द्योतक था और भारत में बहुत लम्बे समय तक इसका बना रहना आवश्यक है। उदारवादियों का विश्वास था कि अंग्रेज न्यायिक लोग हैं, वे भारत के साथ न्याय ही करेंगे। भारतीयों की शिकायतें अंग्रेज नौकरशाही के कारण अथवा अंग्रेजों को हमारी शिकायतों की पूरी जानकारी न होने के कारण से है। यही कारण रहा कि इन लोगों ने इंग्लैड में प्रचार की ओर अधिक ध्यान दिया। इस काल में कांग्रेस ने देश की स्वन्त्रता की मांग नहीं की, केवल भारतीयों के लिए कुछ रियायातों की मांग की।

दूसरा चरण : गरम पंथी राष्ट्रवादी आन्दोलन का प्रारम्भ :– उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम बीसवीं शताब्दी के

प्रारम्भिक वर्षों में गरम पंथी राष्ट्रवादी विचार के लोगों का कांग्रेस में प्रभाव बढने लगा। कांग्रेस में फूट की प्रक्रिया उस समय आरम्भ हो गई जब लोकमान्य तिलक का समाज सुधार के प्रश्न पर गरम पंथी दल अथवा सुधारकों का झगड़ा हो गया। तिलक का कहना था कि स्वराज्य के बिना कोई सामाजिक सुधार नहीं हो सकते, न कोई प्रगति, न कोई उपयोगी शिक्षा, न ही राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता। चार प्रमुख कांग्रेस नेता– लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष और लाला लाजपत राय ने इस आन्दोलन का मार्गदर्शन किया। इस गरमपंथी आन्दोलन के कार्यक्रमों में विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी माल को अंगीकार करने तथा राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह पर बल दिया गया।

भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देना जिससे भारतीयों को कार्य तथा सेवा का अवसर मिल सके। सरकारी नियन्त्रित शिक्षा संस्थाओं के स्थान पर एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनाई जाये तथा विद्यार्थियों को देश सेवा में लगाया जाये।

स्वशासन आन्दोलन :–

1915 से श्रीमती एनीबेसेन्ट ने आइरिस होम रूल लीग के नमूने पर होम रूल लीग स्थापित करने की घोषणा की। 1916 में तिलक ने पूना में अपनी होम रूल लीग स्थापित की। दोनों संस्थायें तालमेल से कार्य कर रही थीं। इनका उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्य के भीतर स्वायत्तता की मांग को लोगों तक पहुँचाना था।

राजनैतिक आन्दोलन 1919 से 1947

रोलेट एक्ट :– प्रथम विश्व युद्ध समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने यह आश्वासन दिया कि भारतीयों को अधिकाधिक सुविधायें दी जायेंगी। लेकिन युद्ध की समाप्ति के बाद किये गये सुधार सन्तोषप्रद नहीं थे बल्कि इसके विपरीत आर्थिक शोषण, प्रेस के कठोर नियम व अन्य दमनकारी गतिविधियां मिली। भारतीय जनता अंग्रेजों के विरोध में डटी हुई थी। सरकार को षडयंत्र का भय था अतः सरकार ने 1917 ई. में सिडनी रोलेट की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसके द्वारा बनाये गये बिल को विधानमण्डल ने 19 मार्च 1919 को पास कर दिया। इस एक्ट के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता था। उसे न कोई अपील, न दलील और न कोई वकील का अधिकार था। इसे काला कानून कहा गया।

जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड :–

13 अप्रैल 1919 को रोलेट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सभा आयोजित की गई जिसमें 20 हजार आदमी इकठ्ठे हुए, जिनमें स्त्री, पुरूष व बच्चे भी थे। जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया और गोली चलाने का हुक्म दिया और गोलियां तब तक चलती रहीं जब तक कारतूस खत्म नहीं हो गयें। सरकार के अनुसार 379 व्यक्ति मारे गये, जबकि कांग्रेस समिति के अनुसार मरने वालों की संख्या 1000 के लगभग थी।

असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलन :–

खिलाफत आन्दोलन भारतीय मुसलमानों द्वारा तुर्की के खलीफा के सम्मान में चलाया था। तुर्की का खलीफा मुस्लिम जगत का धार्मिक रूप से प्रमुख था। 19 अक्टूबर 1919 को पूरे देश में खिलाफत दिवस मनाया गया। गाँधीजी भी इस आन्दोलन में शामिल हुए और ''केसर–ए–हिन्द'' की उपाधि को लौटा दिया। इस आन्दोलन की समाप्ति 10 अगस्त 1920 को सेब्र की संधि से हुई जिसमें तुर्की का विभाजन कर उसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर खलीफा के पद को समाप्त कर दिया।

असहयोग आन्दोलन :–

रोलेक्ट एक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड,हण्टर कमेटी की रिपोर्ट, तुर्की विभाजन, खलीफा का पद समाप्त करना आदि से गाँधी जी अत्यधिक पीड़ित हुए। 1920 में कांग्रेस ने अन्यायी सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पारित किया। इसके अन्तर्गत सरकारी उपाधियों को छोड़ने, विधानसभाओं, न्यायालयों, सरकारी शैक्षणिक संस्थाओं, विदेशी माल इत्यादि का त्याग करना तथा कर न देना शामिल था। इसके विपरीत अपने आप को अनुशासन में रखना, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना, आपसी झगड़ें पंच निर्णय द्वारा तय करना, हाथ से कते और बुने कपड़ें का प्रयोग करना इत्यादि कार्य करने थे। 1921 ई. में इस आन्दोलन के अन्तर्गत लगभग 30000 व्यक्ति जेल गये। भारतीय इतिहास में यह पहला अवसर था जब स्वराज्य के लिए संघर्ष में इतनी अधिक जनता ने भाग लिया। परन्तु जब यह आन्दोलन शिखर पर था तभी 5 फरवरी 1922 ई. को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी–चोरा नामक स्थान पर शान्तिपूर्ण जुलूस पर पुलिस द्वारा अत्याचार करने पर भीड़ ने पुलिस चौकी को आग लगा दी, जिसमें 21 सिपाही एक थानेदार की मौत हो गई। गाँधी जी ने आन्दोलन को हिंसात्मक होते देख 12 फरवरी 1922 को यह आन्दोलन वापस ले लिया। गाँधी जी की इस घोषणा से देश के बड़े नेता आश्चर्यचकित रह गये। सुभाष चन्द बोस ने इसे अत्यन्त कष्ट दायक कहा। मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास ने कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज पार्टी का गठन किया, जिसने विधान परिषदों में भाग लेकर सरकार के कार्यों में रूकावट डालने का कार्य किया।

साइमन कमीशन :–

1919 के भारत सरकार अधिनियम के कार्यों की समीक्षा करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1927 ई में सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन बनाया। इसमें सात सदस्य थे लेकिन इसमें कोई भी भारतीय नहीं था। 3 फरवरी 1928 ई. जब यह कमीशन बम्बई पहुँचा, तो इस का जबरदस्त विरोध किया गया। लाहौर में इसका विरोध लाला लाजपतराय के नेतृत्व में किया गया। विरोध कर रहे लोगों पर पुलिस ने अन्धाधुन्ध लाठियों की वर्षा की जिसमें लाला लाजपत राय के सीने में चोटें आई और एक महीने बाद उनका देहान्त हो गया। 1930 को इस कमीशन की रिपोर्ट आई जिसमें कहीं भी औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना की बात नहीं कहीं गई।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन :–

30 दिसम्बर 1929 ई. के कांग्रेस अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया। पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए

गाँधी जी ने 78 सदस्यों के साथ साबरमती आश्रम से 200 किलोमीटर दूर गुजरात में समुद्र के तट पर स्थित डाण्डी गाँव के लिए पैदल चले। 6 अप्रैल 1930 ई. डाण्डी पहुँच कर नमक बना कर अंग्रेजी कानून को तोड़ा। इस आन्दोलन में गैर कानूनी नमक बनाने, महिलाओं द्वारा शराब की दुकानों, अफीम के ठेकों, विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देना, विदेशी वस्त्रों को जलाना, चरखा कातना, छुआछूत से दूर रहना, विद्यार्थियों द्वारा सरकारी स्कूल, कॉलेज छोड़ना तथा सरकारी कर्मचारियों को नौकरियों से त्याग पत्र देने का आह्वान गाँधीजी ने किया। यह आन्दोलन तेजी से पूरे भारत में फैल गया। देश भर में जनता हड़तालों, प्रदर्शनों और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में भाग लेने लगी। इस आन्दोलन की विशेषता यह थी कि इसमें महिलाओं ने भी भाग लिया। थोड़े समय में ही 60,000 लोग जेलों में डाल दिये गये।

5 मार्च 1931 को सरकार और कांग्रेस के मध्य गाँधी–इरविन समझौता हुआ। वायसराय ने इस बात की घोषणा की कि भारतीय संवैधानिक विकास का उद्देश्य भारत को डोमिनियन स्टेट्स देना है। गाँधी जी ने भारतीय संवैधानिक सुधारों के लिए, बुलाए गये दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। वे वहाँ से निराश लौटे और पुनः 1932 ई. में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। 1933 में गाँधी जी ने अपने आन्दोलन की असफलता को स्वीकार कर लिया और कांग्रेस की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह :–

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया था। भारत को युद्ध में सम्मिलित करने के खिलाफ देश के विभिन्न भागों में हड़ताल व प्रदर्शन हो रहे थे। तभी गाँधी जी ने सत्याग्रह के बजाय व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रस्ताव रखा जिसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। 17 अक्टूबर 1940 ई. को कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। गाँधी जी द्वारा चुने सत्याग्रही एक–एक करके सार्वजनिक स्थलों पर पहुँचेंगें, युद्ध के खिलाफ भाषण देगें और गिरफ्तारी देगें। विनोबा भावे पहले सत्याग्रही थे, जिन्हें तीन माह की सजा दी गई। जवाहर लाल नेहरू दूसरे, ब्रह्मदत्त तीसरे सत्याग्रही थे। इस व्यक्तिगत सत्याग्रह में 30000 लोग पकड़े गये।

भारत छोड़ो आन्दोलन :–

क्रिप्स मिशन की असफलता, जापान का भारत पर आक्रमण का भय, 14 जूलाई 1942 के वर्धा कांग्रेस बैठक में कांग्रेस कार्यकारिणी के निर्णय आदि के कारण 8 अगस्त 1942 ई को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में गाँधी जी के ''भारत छोड़ो प्रस्ताव'' को स्वीकार कर लिया। इस संदर्भ में उन्होंने कहा कि अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूँ वह मंत्र है 'करो या मरो''। हम या तो भारत को स्वतन्त्र करायेगें या इस प्रयास में मारे जायेंगे, मगर हम अपनी पराधीनता को जारी रहते देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेंगे। 9 अगस्त की भोर से पहले ही गाँधी जी सहित दूसरे कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये तथा कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया।

इस आन्दोलन की कोई निश्चत योजना नहीं बनाई गई थी। इस आन्दोलन में शान्तिपूर्ण हड़ताल करना, सार्वजनिक सभायें करना, लगान देने से मना करना तथा सरकार का असहयोग करने की बात कही गई। इस आन्दोलन को गाँधी जी ने अन्तिम संघर्ष बताया था। अतः जनता ने जिस ढ़ंग से ठीक समझा, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। पूरे देश में एक स्वतः स्फूर्त आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। कारखाने, स्कूलों और कॉलेजों में हड़तालें और कामबंदी हुई। पुलिस थानों डाकखानों, रेल्वे स्टेशनों पर हमले किये गये। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अधिकांश नेता गिरफ्तारी से बच गये थे। इसके नेताओं ने भूमिगत रह कर आन्दोलन चलाया, जिनमें जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, रामानन्द मिश्रा, एस.एम.जोशी प्रमुख थे। इस आन्दोलन में जयप्रकाश नारायण की महत्वपूर्ण भूमिका रही। अरूणा आसफ अली ने बम्बई में इस आन्दोलन का सफल नेतृत्व किया। इस आन्दोलन के दौरान अनेक शहरों, कस्बों और गाँवों में आन्दोलनकारियों ने समानान्तर सरकार भी बना ली थी। इस आन्दोलन का भी दमन कर दिया। इस आन्दोलन में गोलीबारी में 10000 से अधिक लोग मारे गये। विद्रोही गाँवों को जुर्माने के रूप में बहुत से रूपये देने पड़े। सरकार ने इस आन्दोलन की हिंसा का उत्तरदायित्व गाँधीजी पर थोप दिया।

इस आन्दोलन ने भारत की आजादी का मार्ग प्रशस्त कर दिया। भारतीयों में वीरता, उत्साह, शौर्य और देश के लिए सर्वस्व त्याग की भावना जागृत की। देश में नेतृत्व की एक नई पीढ़ी आगे आई, जिससे लोगों में संघर्ष करने की हिम्मत और शक्ति बढ़ गई। अब भारत सम्पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कुछ नहीं चाहता था।

राजस्थान के जनजातीय, किसान एवं प्रजामण्डल आन्दोलन

राजस्थान में जनजातीय एवं किसान आन्दोलन :– राजस्थान में राजनीतिक चेतना का प्रारम्भ यहां के किसानों व जनजातीय समाज ने किया। जब यहाँ के किसानों पर अत्यधिक वित्तीय बोझ डाला गया तो यहां किसानों ने विरोध शुरू कर तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती दे डाली। राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में ये आन्दोलन स्वतः स्फूर्त थे, जो अन्याय व अनावश्यक उत्पीडन के विरूद्ध शुरू हुए एवं भावी राजनीतिक आन्दोलन के प्रेरणा के सूत्र बने। राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्र मुख्यतः डूँगरपुर, मेवाड, प्रतापगढ, बांसवाडा व कुशलगढ़ क्षेत्र में भील निवास करते थे। भील अत्यन्त परम्परावादी आदिवासी जाति है जो अपने सामाजिक व आर्थिक स्तर को लेकर सजग रहती है। जब इनके परम्परागत अधिकारों का हनन होने लगा तो इन्होंने शासकों और अंग्रेजो के विरूद्ध विद्रोह कर दिया।

भगत आन्दोलन :–

भीलों को सामाजिक व नैतिक उत्थान के लिए गोविन्द गुरू ने सम्प सभा स्थापित की व उन्हें हिन्दू धर्म के दायरे में बनाये रखने के लिए भगत पंथ की स्थापना की। सम्प सभा द्वारा मेवाड़ डूंगरपुर, ईडर, गुजरात, विजयनगर और मालवा के भीलों में सामाजिक जागृति से शासन संशकित हो उठा, और भीलों को

भगत पंथ छोडने के लिए विवश किया जाने लगा। जब भीलों को बेगार कृषि कार्य के लिए बाध्य किया और जंगलों में उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया तो उन्होंने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजो ने गोविन्द गुरू द्वारा चलाये जा रहे इस सामाजिक सुधार व संगठन के पीछे भील राज्य की स्थापना की संभावना व्यक्त की। गोविन्द गुरू को अप्रैल 1913 ई. को डूँगरपुर राज्य द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन बाद में छोड दिया गया। गोविन्द गुरू अपने साथियों के साथ मानगढ की पहाड़ियों पर चले गये। अक्टूबर 1913 ई. को अपने संदेश द्वारा भीलों को मानगढ की पहाड़ी पर एकत्रित होने को कहा। भील हथियारों सहित बडी संख्या में एकत्रित हुए। भीलों की एकता से भयभीत अंग्रेजों ने सेना भेजी, जिसने मानगढ की पहाड़ी पर पहुँच कर गोला बारी कर भीलों को तितर बितर कर दिया। सरकारी आकड़ों के अनुसार इस कार्यवाही में 1500 भील मारे गये। इस प्रकार भगत आन्दोलन को निर्ममता पूर्वक कुचल दिया गया तथा गोविन्द गुरू को 10 वर्ष के कारावास की सजा दी गई।

एकी आन्दोलनः—

भगत आन्दोलन को कुचलने के बाद भी भीलों के विरूद्व सरकारी नीति जारी रही। 1917 ई. में भीलों व गरासियों ने मिलकर महाराणा को पत्र लिख कर दमनकारी नीति व बेगार के प्रति अपना विरोध जताया। लेकिन परिणाम नहीं निकला तो भीलों ने मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। यह आन्दोलन एकी आन्दोलन के नाम से विख्यात हुआ।

किसान आन्दोलन :—

राजस्थान की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक संरचना सामंती रही है। यह संरचना त्रिस्तरीय थी जिसमें क्रमशः शासक, जागीरदार व कृषक वर्ग सम्मिलित थे। इन सभी के पारस्परिक अंतर्सम्बन्धों पर यह व्यवस्था टिकी थी। 19 वीं शताब्दी के अंत तक ये संबंध सौहार्द्र पूर्ण बने रहे मगर इसके बाद राजस्थान का परिदृश्य बदलना आरम्भ हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजस्थान के विभिन्न भागों को अनेक किसान आन्दोलनों का सामना करना पड़ा। इन किसान आन्दोलनों के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे –

(1) अंग्रेजों के प्रभाव में आकर शासकों ने अपनी प्रजा की ओर पर्याप्त ध्यान देना छोड़ दिया। शासकों व जागीरदारों ने स्वयं का अस्तित्व ही ब्रिटिश सत्ता पर आधारित समझ लिया। इसलिए शासकों की निर्भरता जागीरदारों पर व जागीरदारों की निर्भरता कृषकों पर समाप्त होती चली गई।

(2) राजस्व अधिक वसूलने के साथ—साथ ही कृषकों से ली जाने वाली बेगारों व लागों में भी अप्रत्याशित वृद्धि देखी गई। कुछ राज्यों में तो इन लागों की संख्या 300 से अधिक थी।

(3) इस काल में अन्य व्यवसायों से विस्थापित लोगों के कृषि पर निर्भर हो जाने के कारण कृषक मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई। कृषक मजदूरों की संख्या में वृद्धि होने के कारण जागीरदारों के रूख में अधिक कठोरता आ गई।

(4) कृषि उत्पादित मूल्यों में गिरावट व इजाफा दोनों स्थितियां कृषकों के लिए लाभकारी नहीं थे। जहां एक ओर कीमत में गिरावट के कारण कृषकों की बचत का मूल्य कम हो जाता था, वहीं कीमतें बढ़ने के कारण भी उसे लाभ का भाग नहीं मिल पाता था क्योंकि जागीरदार लगान जिन्स के रूप में लेता था।

(5) अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को अपनाने के फलस्वरूप सामंतों का कृषकों के प्रति उदार व पैतृक नजरिया बदल गया।

बिजौलिया किसान आन्दोलन (भीलवाड़ा) –

बिजौलिया किसान आन्दोलन राजस्थान के अन्य किसान आन्दोलनों का अगुवा रहा। यहाँ के किसानों में अधिकांश धाकड़ जाति के थे। 1894 ई. में बिजौलिया के राव गोविन्ददास की मृत्यु तक किसानों को जागीरदार के खिलाफ कोई विशेष शिकायत नहीं थी। 1894 ई. में बने नये जागीरदार कृष्णसिंह (किशन सिंह) ने किसानों के प्रति ठिकाने की नीति व जागीर प्रबन्ध में परिवर्तन किए। इसके समय में लगभग 84 प्रकार की लाग—बागों के द्वारा किसानों से उनकी मेहनत की कमाई का लगभग 87 प्रतिशत भाग जागीरदार ले लिया करता था। इसके बाद भी उनसे बेगार अलग से करवाई जाती थी।

1897 ई. में गिरधरपुरा नामक गांव में गंगाराम धाकड़ के पिता के मृत्युभोज के अवसर पर हजारों किसानों ने अपने कष्टों की खुलकर चर्चा की और मेवाड़ महाराणा को उनसे अवगत करवाया। महाराणा ने सुनवाई के बाद किसानों की लागत और बेगार संबंधी शिकायतों की जाँच के लिए सहायक राजस्व अधिकारी हामिद हुसैन को नियुक्त किया। हामिद हुसैन ने ठिकाने के विरुद्ध महकमा खास में रिपोर्ट दी किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। राज्य की तरफ से ठिकाने को मात्र एक—दो लागतें कम करने को कहा गया। इससे राव कृष्णसिंह का हौंसला बढ़ गया।

विभिन्न प्रकार की लागों व 1899—1900 ई. के भयंकर दुर्भिक्ष (छप्पनिया अकाल) के कारण बिजौलिया के किसानों की स्थिति पहले से ही काफी दयनीय थी। इसके बावजूद 1903 ई. में राव कृष्णसिंह ने किसानों पर 'चँवरी कर' नामक एक नया कर और लगा दिया। इसमें हर व्यक्ति को अपनी लड़की के विवाह के अवसर पर पाँच रूपये ठिकाने के कोष में जमा करवाना पड़ता था। चँवरी कर बिजोलियावासियों के लिए आर्थिक रूप से तो भारस्वरूप था ही, साथ ही साथ सामाजिक रूप से घोर अपमानजनक भी था। किसानों ने इसका मौन विरोध किया और दो वर्ष तक अपनी कन्याओं का विवाह नहीं किया। किसानों के प्रतिरोध के आगे राव को चंवरी की लाग उठा देने, फसल में ठिकाने का हिस्सा 2/5 लेने, कूंता करने वाले अहलकारों के साथ बीसियों आदमियों को न बुलाने की घोषणा करनी पड़ी।

1906 ई. में बिजौलिया के नए स्वामी पृथ्वीसिंह ने न केवल पुरानी रियायतों को समाप्त कर दिया बल्कि प्रजा पर 'तलवार बँधाई' नामक नया कर लगा दिया। राव पृथ्वीसिंह के समय जब लूट और शोषण चरम सीमा को पार कर गया तो 1913 ई. में किसानों ने साधु सीतारामदास, फतहकरण चारण और ब्रह्मदेव के

नेतृत्व में जागीर क्षेत्र में हल चलाने से इंकार कर दिया। जागीर क्षेत्र की भूमि पड़त रहने के कारण ठिकाने को बड़ी हानि उठानी पड़ी। इसके बाद ठाकुर द्वारा की जाने वाली सख्ती व अत्याचारों में और वृद्धि हो गई। फतहकरण चारण व ब्रह्मदेव आतंकित होकर बिजौलिया छोड़कर चले गए तथा साधु सीतारामदास को पुस्तकालय की नौकरी से अलग कर दिया गया।

साधु सीतारामदास द्वारा आमंत्रित करने के बाद विजयसिंह पथिक ने आन्दोलन का नेतृत्व संभाला और 1917 ई. में हरियाली अमावस्या के दिन बैरीसाल गाँव में 'ऊपरमाल पंच बोर्ड' नामक एक संगठन स्थापित कर उसके तत्त्वावधान में आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। तिलक ने किसानों की वीरता और संगठन से प्रभावित होकर न केवल अपने अंग्रेजी पत्र 'मराठा' में बिजौलिया के बारे में एक सम्पादकीय लिखा अपितु मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह को भी पत्र लिखा कि 'मेवाड़ के राजवंश ने स्वतन्त्रता के लिए बहुत बलिदान किए है। आप स्वयं स्वतन्त्रता के पुजारी हैं, अतएव आपके राज्य में स्वतन्त्रता के उपासकों को जेल में डालना कलंक की बात है।' बिजौलिया के किसानों को जागृत करने के लिए एक ओर माणिक्यलाल वर्मा द्वारा रचित 'पंछिड़ा' गीत गाया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर प्रज्ञाचक्षु भंवरलाल स्वर्णकार भी अपनी कविताओं के माध्यम से गांव–गांव में अलख जगा रहे थे। पथिक ने भी बिजौलिया के आस–पास के इलाके के युवकों में देशभक्ति की भावना भरने के उद्देश्य से इस समय 'ऊपरमाल सेवा समिति' नामक संगठन की स्थापना की तथा 'ऊपरमाल का डंका' नाम से पंचायत का एक पत्र भी निकलवाया। आन्दोलन को देशभर में चर्चित करने के लिए पथिक ने किसानों की तरफ से कानपुर से निकलने वाले समाचार–पत्र 'प्रताप' के सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी को चाँदी की राखी भेजी। गणेश शंकर विद्यार्थी ने राखी स्वीकार करते हुए आन्दोलन को समर्थन करने का आश्वासन दिया। 'प्रताप' समाचार–पत्र ने बिजौलिया किसान आन्दोलन को राष्ट्रीय पहचान दिलाई। प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' में मेवाड़ के जन–आन्दोलन का जो चित्रण किया गया है, वह बिजौलिया किसान आन्दोलन का ही प्रतिबिम्ब है।

उदयपुर राज्य सरकार ने अप्रैल, 1919 ई. में बिजौलिया के किसानों की शिकायतों की सुनवाई करने के लिए मांडलगढ़ हाकिम बिन्दुलाल भट्टाचार्य की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। आयोग ने किसानों के पक्ष में अनेक सिफारिशें की किन्तु मेवाड़ सरकार द्वारा इस तरफ कोई ध्यान नहीं दिए जाने के कारण आन्दोलन पूर्ववत् जारी रहा। भारत सरकार के विदेश विभाग के अधिकारियों का मत था कि बिजौलिया किसान पंचायत के साथ शीघ्र समझौता किया जाना आवश्यक है, अन्यथा सम्पूर्ण राजपूताने में किसान आन्दोलन उग्र हो सकता है। ऐसी स्थिति में बिजौलिया आन्दोलन को तुरन्त शांत करने के उद्देश्य से राजस्थान के ए. जी. जी. रॉबर्ट हॉलैंड की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया। फरवरी 1922 में रॉबर्ट हॉलैंड ने किसानों से वार्ता कर 35 लागतों को माफ कर दिया। दुर्भाग्य से ठिकाने की कुटिलता के कारण यह समझौता स्थायी नहीं हो सका।

1927 ई. के नए बन्दोबस्त के विरोध में किसानों ने ठिकाने पर दबाव बनाने के लिए विजयसिंह पथिक के परामर्श के बाद लगान की ऊँची दरों के विरोध में अपनी माल भूमि छोड़ दी। मगर किसानों की धारणा के विपरित ठिकाने द्वारा भूमि की नीलामी किये जाने पर भूमि को लेने वाले नये किसान मिल गये। किसानों द्वारा भूमि छोड़ने के फैसले के लिए पथिक को उत्तरादायी ठहराया गया, जिसके बाद उन्होंने अपने को इस आन्दोलन से अलग कर लिया। इसके बाद किसानों ने अपनी भूमि को वापिस प्राप्त करने के लिए आन्दोलन जारी रखा जो 1941 तक चलता रहा।

सीकर किसान आन्दोलन –

किसान आन्दोलन का प्रारम्भ सीकर ठिकाने के नए रावराजा कल्याणसिंह द्वारा 25 से 50 प्रतिशत तक भू–राजस्व वृद्धि करने से हुआ। 1922 ई. में उसने पूर्व रावराजा के दाह–संस्कार तथा स्वयं के गद्दीनशीनी समारोह पर अधिक खर्च का बहाना बनाकर इस वायदे पर लगान वृद्धि की कि अगले वर्ष लगान में रियायत दे दी जायेगी, किन्तु 1923 ई. में रावराजा रियायत देने सम्बन्धी अपने पुराने वायदे से मुकर गया। राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में किसानों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। लंदन से प्रकाशित होने वाले 'डेली हेराल्ड' नामक समाचार–पत्र में किसानों के समर्थन में लेख छपे और 1925 में ब्रिटिश संसद के निचले सदन 'हाऊस ऑफ कामंस' में लिचेस्टर (पश्चिम) से लेबर सदस्य सर पैथिक लारेंस ने किसानों के समर्थन में आवाज उठाई।

1931 ई. में 'राजस्थान जाट क्षेत्रीय सभा' की स्थापना के बाद किसान आन्दोलन को नई ऊर्जा मिली। किसानों को धार्मिक आधार पर संगठित करने के लिए ठाकुर देशराज ने पथैना में एक सभा कर ''जाट प्रजापति महायज्ञ'' करने का निश्चय किया। बसंत पंचमी 20 जनवरी 1934 को सीकर में यज्ञाचार्य पं. खेमराज शर्मा की देखरेख में यह यज्ञ आरम्भ हुआ। यज्ञ की समाप्ति के बाद किसान यज्ञपति कुं. हुक्मसिंह को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकालना चाहते थे किन्तु रावराजा कल्याणसिंह और ठिकाने के जागीरदार इसके विरुद्ध थे। इसका कारण यह था कि ठिकाने का शासक और जागीरदार किसानों को सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अपने से हीन मानते थे और हाथी पर सवार होकर निकाले जाने वाले जुलूस को अपना विशेषाधिकार मानते थे। इस कारण सीकर ठिकाने ने यज्ञ की पहली रात हाथी को चुरा लिया। हाथी चुराने की घटना ने वहाँ उपस्थित लोगों में रोष पैदा करने का कार्य किया और माहौल तनावपूर्ण हो गया। प्रसिद्ध किसान नेता छोटूराम ने जयपुर महाराजा को तार द्वारा सूचित किया कि एक भी किसान को कुछ हो गया तो अन्य स्थानों पर भारी नुकसान होगा और जयपुर राज्य को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। अंततः किसानों की जिद के आगे सीकर ठिकाने को झुकना पड़ा और स्वयं ठिकाने ने जुलूस के लिए सजा–सजाया हाथी प्रदान किया। सात दिन तक चलने वाले इस यज्ञ कार्यक्रम में स्थानीय लोगों सहित उत्तरप्रदेश, पंजाब, लुहारू, पटियाला और हिसार जैसे स्थानों से

लगभग तीन लाख लोग उपस्थित हुए। बीसवीं शताब्दी में राजपूताने में होने वाला यह सबसे बड़ा यज्ञ था।

सीकर किसान आन्दोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सिहोट के ठाकुर मानसिंह द्वारा सोतिया का बास नामक गाँव में किसान महिलाओं के साथ किए गये दुर्व्यवहार के विरोध में 25 अप्रेल, 1934 ई. को कटराथल नामक स्थान पर श्रीमती किशोरी देवी की अध्यक्षता में एक विशाल महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। सीकर ठिकाने ने उक्त सम्मेलन को रोकने के लिए धारा–144 लगा दी। इसके बावजूद कानून तोड़कर महिलाओं का यह सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में बड़ी सख्या में महिलाओं ने भाग लिया जिनमें श्रीमती दुर्गादेवी शर्मा, श्रीमती फूलांदेवी, श्रीमती रमादेवी जोशी, श्रीमती उत्तमादेवी आदि प्रमुख थी। 25 अप्रैल 1935 को जब राजस्व अधिकारियों का दल लगान वसूल करने के लिए कूदन गांव पहुँचा तो एक वृद्ध महिला धापी दादी द्वारा उत्साहित किए जाने पर किसानों ने संगठित होकर लगान देने से इंकार कर दिया। पुलिस द्वारा किसानों के विरोध का दमन करने के लिए गोलियाँ चलाई गई जिसमें चार किसान – चेतराम, टीकूराम, तुलछाराम तथा आशाराम शहीद हुए और 175 को गिरफ्तार किया गया। इस विभत्स हत्याकाण्ड के बाद सीकर किसान आन्दोलन की गूंज एक बार फिर ब्रिटिश संसद में सुनाई दी। 1935 ई. के अंत तक किसानों की अधिकांश मांगे स्वीकार कर ली गई। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले प्रमुख नेताओं में सरदार हरलालसिंह, नेतरामसिंह गौरीर, पन्नेसिंह बाटड़ानाउ, हरूसिंह पलथाना, गोरूसिंह कटराथल, ईश्वरसिंह भैंरूपुरा, लेखराम कसवाली आदि शामिल थे।

किसान आन्दोलन (चित्तौड़गढ़) बेगूं –

बिजौलिया किसान आन्दोलन से प्रेरित होकर बेगूं ठिकाने के कृषकों ने भी 1921 में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि वहां के लोग भी लगान व लाग–बाग के अत्याचारों से पीड़ित थे। बेगूं ठिकाने के किसान भी बिजोलिया की तरह ही अधिकांशतः धाकड़ जाति के थे। वे विभिन्न लागतों, बेगार, लगान की ऊँची दरों व ठिकाने के अत्याचारों की चक्की में पिस रहे थे। राजस्थान सेवा संघ के सदस्यों – विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी और माणिक्यलाल वर्मा के सतत् प्रयत्नों से बेंगूँ के किसानों में जागृति का संचार हुआ।

1921 में मेनाल में भैंरोंकुंड पर एकत्र होकर बेगूं के पट्टे के किसानों की सभा हुई। बिजौलिया आन्दोलन की उग्रता से प्रभावित बेगूं के किसानों ने पथिक से मिलकर लागबाग, बेगार और ऊँचे लगान के विरूद्ध आन्दोलन का नेतृत्व करने की प्रार्थना की। पथिक ने इस आन्दोलन का भार राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी पर डाल दिया।

दो वर्षो के संघर्ष के बाद बेगूं ठाकुर रावत अनूपसिंह को झुकना पड़ा। उसने किसानों की मांगों को स्वीकार करते हुए एक समझौता कर लिया। परन्तु मेवाड़ सरकार और रेजिडेन्ट को यह बात नहीं भायी। उन्होंने राजस्थान सेवा संघ और रावल अनूपसिंह के बीच हुए समझौते को 'बोल्शेविक' फैसले की संज्ञा दी और अनूपसिंह को उदयपुर में नजरबंद कर ठिकाने पर मुंसरमात बैठा दी।

ठिकाने ने किसानों की शिकायतों के समाधान के लिए मेवाड़ के बन्दोबस्त आयुक्त ट्रेंच के नेतृत्व में एक आयोग नियुक्त किया। बेगूं के किसान ट्रेंच के निर्णय पर विचार करने के लिए गोविन्दपुरा में एकत्र हुए। यहां पांच माह से लगभग 600 किसान पंच डटे हुए थे। ट्रेंच व लाला अमृतलाल ने गोविन्दपुरा पहुंच कर एकत्र किसानों को आयोग द्वारा दिए गए निर्णय को स्वीकार करने तथा तितर–बितर हो जाने का आदेश दिया, किन्तु किसान डटे रहे। 13 जुलाई, 1923 ई. को किसानों पर गोलियाँ चलाई गई जिसमें रूपाजी और कृपाजी धाकड़ नामक दो किसान शहीद हो गए। महिलाओं को अपमानित किया गया तथा पाँच सौ से ज्यादा किसानों को गिरफ्तार कर लिया गया। राज्य के अत्याचारों से किसानों का मनोबल गिरता देख पथिक ने गुप्त रूप से बेगूं पहुंचकर स्वयं किसान आन्दोलन का नेतृत्व संभाल लिया। मेवाड़ सरकार द्वारा इन्हें 10 सितम्बर, 1923 ई. को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया जिसके बाद आन्दोलन धीरे–धीरे समाप्त हो गया।

बरड़ किसान आन्दोलन (बूंदी) –

बिजौलिया और बेगूं के किसानों के समान बून्दी राज्य के किसानों को भी अनेक प्रकार की लागतें, बेगार और ऊँची दरों पर लगान की रकम देनी पड़ती थी। इससे त्रस्त बिजौलिया की सीमा से जुड़े बून्दी राज्य के बरड़ क्षेत्र के किसानों ने बून्दी प्रशासन के विरूद्ध अप्रैल, 1922 ई. में आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया। इस आन्दोलन का नेतृत्व 'राजस्थान सेवा संघ' के कर्मठ कार्यकर्ता नयनूराम शर्मा के हाथों में था। 2 अप्रैल, 1923 ई. को डाबी गाँव में नयनूराम शर्मा की अध्यक्षता में चल रही किसानों की सभा पर पुलिस अधीक्षक इकराम हुसैन के नेतृत्व में गोलियाँ चलाई गई जिसमें नानक भील और देवलाल गुर्जर शहीद हुए। 27 सितम्बर, 1925 ई. को राजस्थान सेवा संघ की हाड़ौती शाखा की एक सभा में शासन को किसानों की समस्याओं से परिचित करवाने के लिए पं. नयनूराम शर्मा को अधिकृत किया गया। 1927 ई. के बाद राजस्थान सेवा संघ अंतर्विरोधों के कारण बंद हो गया। अतः राजस्थान सेवा संघ के साथ ही बूँदी का बरड़ किसान आन्दोलन समाप्त हो गया।

नीमूचणा किसान आन्दोलन (अलवर) –

अलवर में सूअरों को मारने पर प्रतिबन्ध था और ये सूअर किसानों की फसल को बर्बाद कर देते थे। इन सूअरों के उत्पात से दुखी होकर 1921 ई. में अलवर के किसानों ने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस आन्दोलन के दबाव में महाराजा को सूअरों को मारने की इजाजत देनी पड़ी। अलवर में 1922 ई. में तीसरा भूमि बन्दोबस्त होने के बाद 1923–24 ई. में भू–राजस्व की नई दरें लागू कर दी गई। इस नये बन्दोबस्त से पूर्व राजपूत एवं ब्राह्मणों से अन्य जातियों की तुलना में कम भू–राजस्व लिया जाता था। मगर नये बन्दोबस्त द्वारा इन जातियों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया, जिसके कारण इनमें असंतोष के स्वर उठना स्वाभाविक था। यद्यपि अन्य जातियों के किसान भी इस बन्दोबस्त से संतुष्ट

नहीं थे मगर इसके विरोध में नेतृत्वकारी भूमिका राजपूतों ने निभाई। अलवर के बानसूर और गाजी का थाना के राजपूतों ने भूमि बन्दोबस्त के नाम पर लगने वाले इन करों का विरोध किया और रेजीडेन्ट से शिकायत भी की। इस प्रकार की शिकायत करने से महाराजा जयदेवसिंह बहुत क्रोधित हुए।

14 मई, 1925 ई. को भू–राजस्व के नाम पर होने वाली इस लूट पर चर्चा करने के लिए किसान अलवर की बानसूर तहसील के नीमूचणा नामक गांव में एकत्रित हुए। एकाएक राज्य की सेना ने कमाण्डर छज्जूसिंह के नेतृत्व में इन किसानों को घेरकर गोलियों की बौछार कर दी तथा उनके घर जला दिए। इस घटना में 156 व्यक्ति मारे गए और लगभग 600 व्यक्ति घायल हुए। 'रियासत' नामक समाचार–पत्र ने इस हत्याकाण्ड की तुलना जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से की, जबकि महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' में इस हत्याकाण्ड को 'दोहरी डायरशाही' की संज्ञा दी और इसे जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से भी अधिक वीभत्स बताया।

राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में राजस्थान के विभिन्न भागों में सामन्ती अत्याचारों एवं शोषण के विरूद्ध अनेक आन्दोलन शुरू हो गए थे किन्तु इन आन्दोलनों का उद्देश्य केवल भू–राजस्व में कमी एवं सामन्ती अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना ही था। 1920 ई. में कांग्रेस द्वारा देशी रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का प्रस्ताव पारित होने से राजपूताना के राष्ट्रवादी लोगों को मायूस होना पड़ा। 1927 में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना होने के बाद राजनीतिक कार्यकर्ताओं को एक ऐसा मंच मिल गया जहां वे अपनी बात कह सकते थे। इस संस्था की स्थापना व प्रथम अधिवेशन 16–18 दिसम्बर, 1927 ई. को बम्बई में दीवान बहादुर रामचन्द्रराव की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। संस्था की कार्यकारिणी में राजस्थान के सात सदस्य – नयनूराम शर्मा (कोटा), शंकरलाल शर्मा (अजमेर), जयनारायण व्यास व कन्हैयालाल कलयंत्री (जोधपुर), रामदेव पोद्दार व बालकिशन पोद्दार (बीकानेर) तथा त्रिलोकचन्द माथुर (करौली) लिए गये। श्री विजयसिंह पथिक संस्था के उपाध्यक्ष तथा श्री रामनारायण चौधरी राजस्थान तथा मध्यभारत के लिए प्रान्तीय सचिव चुने गये। इस संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य – भारत की देशी रियासतों में वैध और शांतिपूर्ण उपायों से वहां के राजाओं की छत्रछाया में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था।

1938 ई. में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में देशी राज्यों के आन्दोलन को समर्थन देने का प्रस्ताव पास होने के बाद विभिन्न देशी रियासतों में प्रजामण्डलों की व्यवस्थित स्थापना हुई। देशी रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना, सामन्ती अत्याचारों व शोषण का विरोध, देशी रियासतों में राजनैतिक जागृति पैदा करना और देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए जो राजनीतिक संगठन स्थापित हुए, उन्हें प्रजामण्डल कहा गया। राजस्थान की सभी रियासतों में अपने–अपने प्रजामण्डल कार्यरत रहे थे जिन्होंने आजादी तक उपरोक्त मुद्दों पर समय–समय पर अनेक आन्दोलनों का संचालन किया।

प्रमुख प्रजामण्डलों की स्थापना

प्रजामण्डल	वर्ष	संस्थापक
1. जयपुर प्रजामण्डल	1931	जमनालाल बजाज व कपूरचन्द पाटनी
2. बूंदी प्रजामण्डल	1931	कांतिलाल
3. हाड़ौती प्रजामण्डल	1934	पं. नयनूराम शर्मा
4. मारवाड़ प्रजामण्डल	1934	जयनारायण व्यास
5. सिरोही प्रजामण्डल	1934	वृद्धिशंकर त्रिवेदी
6. बीकानेर प्रजामण्डल	1936	मघाराम वैद्य
7. कोटा प्रजामण्डल	1939	पं. नयनूराम शर्मा
8. मेवाड़ प्रजामण्डल	1938	माणिक्यलाल वर्मा
9. अलवर प्रजामण्डल	1938	हरिनारायण शर्मा
10. भरतपुर प्रजामण्डल	1938	किशनलाल जोशी
11. शाहपुरा प्रजामण्डल	1938	रमेशचन्द्र ओझा
12. धौलपुर प्रजामण्डल	1938	ज्वालाप्रसाद जिज्ञासु
13. करौली प्रजामण्डल	1938	त्रिलोकचन्द माथुर
14. किशनगढ़ प्रजामण्डल	1939	कांतिलाल चौथानी
15. जैसलमेर प्रजामण्डल	1945	मीठालाल व्यास
16. कुशलगढ़ प्रजामण्डल	1942	भंवरलाल निगम
17. डूँगरपुर प्रजामण्डल	1944	भोगीलाल पाण्ड्या
18. बाँसवाड़ा प्रजामण्डल	1945	भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी
19. प्रतापगढ़ प्रजामण्डल	1945	अमृतलाल पायक
20. झालावाड़ प्रजामण्डल	1946	मांगीलाल भव्य

प्रजामण्डल आन्दोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि ये थी कि इसने महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर पुरुषों के बराबर खड़ा कर दिया। अनेक महिलाओं ने आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया और गिरफ्तारियाँ दी। जयपुर प्रजामण्डल के आन्दोलनों में अनेक महिलाओं ने भाग लिया जिनमें रमादेवी देशपाण्डे, सुशीला देवी, इंदिरा देवी, अंजना देवी चौधरी आदि प्रमुख थीं। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान जोधपुर में गोरजा देवी, सावित्री देवी भाटी, सिरेकंवल व्यास, राजकौर व्यास आदि ने गिरफ्तारियाँ दी तो उदयपुर में माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी नारायणदेवी अपने 6 माह के पुत्र को गोद में लिए जेल गई। प्रजामण्डलों के कार्यकर्ताओं ने सामाजिक सुधार, शिक्षा प्रसार, बेगार उन्मूलन तथा दलित–आदिवासियों के उत्थान पर भी ध्यान दिया। इन संगठनों ने उत्तरदायी संघर्ष के लिए आन्दोलन चलाए जिससे राजशाही और सामन्ती शोषण से दबी राजस्थान की जनता में राजनैतिक जनजागृति पैदा हुई। 1938 ई. से पहले देशी रियासतों की जनता का राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सामंजस्य नहीं था किन्तु प्रजामण्डलों की स्थापना के बाद 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान यहाँ के स्थानीय आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बन गए। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ावा मिला।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई थी ?
2. सुर्जीगाँव की सन्धि कब और किस के मध्य हुई ?
3. टीपू सुल्तान कहाँ का शासक था ?
4. अमृतसर की सन्धि कब हुई ?
5. सन्यासी अंग्रेजों से क्यों नाराज थे ?
6. वासुदेव फड़के किस प्रान्त से थे ?
7. बिहार में 1857 ई. की क्रान्ति का नेतृत्व किसने किया ?
8. व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही कौन थे ?
9. बेगूं का किसान आन्दोलन कब प्रारम्भ हुआ ?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. प्रथम अंग्रेज मराठा संघर्ष का उल्लेख कीजिये।
2. चतुर्थ आंग्ल—मैसूर युद्ध के क्या परिणाम निकले ?
3. विनायक दामोदर सावरकर का स्वतन्त्रता संघर्ष में क्या योगदान है ?
4. चम्पारण किसान आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिये।
5. इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना कब और कैसे हुई ?
6. गोविन्द गुरु ने कौनसा आन्दोलन चलाया ?
7. बिजौलिया किसान आन्दोलन को समझाइए।
8. साइमन कमीशन का भारतीयों ने क्यों विरोध किया ?
9. प्रजामण्डलों की राजस्थान में स्थापना क्यों की गई ?

निबन्धात्मक प्रश्नः—

1. मराठों व मैसूर द्वारा अंग्रेजों से किये गये संघर्ष का वर्णन कीजिये।
2. 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष का वर्णन कीजिये।
3. 1919 ई. से 1949 ई. तक चलाये गये जन आन्दोलनों का वर्णन कीजिये।
4. भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में क्रान्तिकारियों का योगदान क्या रहा उल्लेख कीजिये ?
5. राजस्थान में किसान आन्दोलनों का वर्णन कीजिये।